

जीवन रश्मियाँ

(बाबू गुलाब राय के जीवन सम्बन्धी निबन्धों का संग्रह)

संकलन करीं
सुधा रानी गुप्ता,
विदुषी, प्रभाकर

शिव अग्रवाल एण्ड कम्पनी प्रा० लि०

दिल्ली

आगरा

जयपुर

प्रथम संस्करण : १९६२



मूल्य : पाँच रुपया

शिव लाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी प्राइवेट लिमिटेड आगरा
के हेतु राधेमोहन अग्रवाल, मैनेजिंग डाइरेक्टर के प्रबन्ध से
प्रकाशित एवं रधुनाथ प्रिंटिंग प्रेस, आगरा में मुद्रित

पल्लवत फूलत नवल नित संसार विपट नमा महे ।

- गोस्वामी तुलसीदास

समर्पण

जिन्होंने अपनी स्नेहमयी सेवा द्वारा मेरे जीवन का भार हलका कर
उसको सुख-सुविधाओं से सम्पन्न बनाने में
अपना सारा जीवन समर्पित कर दिया है
उन्हीं अपनी सहधर्मिणी श्रीमती भगवती देवी को
ये जीवन सम्बन्धी निबन्ध
सादर सस्नेहा समर्पित

दीपावली
संवत् २०१८

गुलाबराय

अपनी बात

यद्यपि 'राम कृपा कछु दर्लभ नाही' में मुझे पूर्ण विश्वास है, तथापि राम कृपा के लिए जो साधना और अनन्यता चाहिए उनका मुझ में अपेक्षाकृत अभाव है। अपने शरीर की वर्तमान स्थिति देखता हुआ मुझे बहुत कम आशा है कि मैं कोई और निबन्ध संग्रह निकाल सकूँगा।

यह मेरे निबन्धों का चौथा संग्रह है। मेरा पहला संग्रह साहित्यिक निबन्धों का है। वह 'अध्ययन और आस्वाद' के नाम से छपा है, बाकी दो संग्रह 'मेरे निबन्ध' तथा 'कुछ उथले कुछ गहरे' जीवन और जगत से सम्बन्धित हैं।

जीवन का क्षेत्र बहुत विस्तृत है, उसके लिए जितने निबन्ध संग्रह निकलें उतने थोड़े हैं। वर्तमान युग में आलोचनात्मक निबन्धों को कुछ अधिकप्रश्रय मिला है। यह बुरा नहीं है, किन्तु जीवन सम्बन्धी निबन्धों की उपेक्षा कुछ अखरती है। वे साहित्यिक ढंग और शैली से लिखे जाने पर साहित्यिक हो सकते हैं। इस संग्रह के निबन्धों के विषय जीवन और जगत से सम्बन्धित हैं, किन्तु शैली पूर्णरूपेण साहित्यिक है। इसी नाते ये साहित्यिक निबन्धों की कोटि में आते हैं।

पहले भाग के जो निबन्ध मेरे जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण को उपस्थित करते हैं, वे धर्म, अर्थ, काम के समन्वय से अनुप्राणित हैं। सज्जन और सज्जनता में मेरे जवन सम्बन्धी आदर्श हैं। यद्यपि मैं स्वयं उन आदर्शों के पालन करने में असमर्थ रहा हूँ तथापि यदि दूसरे सज्जन उनका पालन कर सकें तो मुझे प्रसन्नत होगी। इसलिए मैंने उस लेख को मूर्धन्य स्थान दिया है। मेरे जीवन आदर्श धर्म, अर्थ, काम के समन्वय से प्रभावित हैं। मेरे ये निबन्ध, विशेषकर वह निबन्ध जो घरेलू लड़ाई झगड़ों से सम्बन्धित है, उन लोगों के लिए है जिनके घर में मट्टी के चूल्हे हैं। वे अने पारस्परिक प्रेम और सद्भाव में वृद्धि कर उन्हें स्वर्णरञ्जित बना सकते हैं।

मेरे राजनीति निबन्ध भी मेरे जीवन दर्शन से प्रभावित हैं। राजनीति पर मैंने कम लिखा है, जो कुछ लिखा है वह सद्भावना मात्र है। मैंने राजनीति में कोई सक्रिय भाग नहीं लिया, इससे मुझे राजनीति पर कहने या लिखने का कोई अधिकार नहीं है। सद्भावनाओं को मुझ में कमी नहीं रही। देश के लिए कुछ बलिदान न कर सका इसका मुझे खेद है।

इस संग्रह में कुछ लेख हास्य-व्यंग्यात्मक भी है। वैसे तो मेरे सभी लेखों में थोड़ा-बहुत हास्य व्यंग्य का पुट रहता है किन्तु ये विशेष रूप से हास्य-व्यंग्यात्मक है। गम्भीर न होते हुए भी इनकी साहित्यिकता अक्षुण्ण बनी हुई है।

दो तीन निजी वैयक्तिक निबन्ध भी है। यद्यपि मेरे सभी निबन्धों में थोड़ा बहुत वैयक्तिक पुट है तथापि इनमें विषय और शैली दोनों में ही व्यक्ति की प्रधानता है।

अन्तिम समुदाय उन लेखों का है जो जगत से सम्बन्ध रखते हैं, वे अधिकांश में यात्रा सम्बन्धी हैं। उनमें विषय प्रधानता की मात्रा कुछ अधिक है। शैली का चमत्कार भी कुछ अपेक्षाकृत कम है। इस संग्रह में जीवन सम्बन्धी लेखों की प्रधानता होने के कारण, इस का नाम जीवन रश्मियाँ रखा है। ये रश्मियाँ कुछ धुँधला-सा भी प्रकाश दे सके तो मैं अपने को धन्य समझूँगा।

इन निबन्धों के सम्बन्ध में अधिक कहना अपने मुँह मियाँ मिट्टू बनना होगा। इतना ही कह कर विराम लूँगा कि पाठकों ने जिस सहृदयता से मेरे अन्य निबन्ध संग्रहों को अपनाया है उसी सहृदयता से इसे भी अपनायेंगे। मुझे मालूम है कि उनकी सहृदयता और सद्भावना का स्रोत खाली नहीं हुआ होगा।

सधन्यवाद !

गोमती-निवास

विनीत

आगरा

गुलाबराय

दीपावली, संवत् २०१८

विषय-सूची

नैतिक और जीवन मीमांसा सम्बन्धी

1	सज्जन और सज्जनता	10
2	उच्च जीवन-स्तर	22
3	घरेलू लड़ाई झगड़े	29
4	नेता के आवश्यक गुण	47
5	पारिवारिक जीवन और निजी सम्बन्ध	57

राजनैतिक

6	गणतन्त्र दिवस का शिव-संकल्प	66
7	नवयुग का साहित्यकार क्या लिखे ?	69
8	ब्रिटिश शासन के वे दिन	72

वैयक्तिक

9	मेरी प्रवास-भीरूता	79
10	मेरा चौहत्तरावाँ जन्म दिवस	83
11	मेरे जीवन को सफल बनाने वाला	87
12	मेरे मानसिक उपादान	92

हास्य-व्यंग्य

13	प्रीतीभोज-समस्या : मीमांसा	102
14	बस आपकी शुभ सम्मति की कसर है	106

15	सीमावर्ती चोर	109
16	भारतीय लेखक और मधुमेह	115
17	हस्ताक्षर या ब्रह्माक्षर	117
18	पृथ्वी पर कल्चक्ष	120
19	शीर्षकहीन लेख	124

यात्रा सम्बन्धी

20	बौद्ध कला के प्रहारी-साची के स्तूप	128
21	छतरपुर और खजुराहों के पुनदर्शन	134
22	सुरम्य झीलों का नगर भोपाल	140
23	कवीन्द्र रवीन्द्र शिमला-स्मृति	144

नैतिक और जीवन मीमांसा सम्बन्धी

सज्जन और सज्जनता

शान्ता महान्तो निवसन्ति सन्तो,
वसन्तवल्लोकहितं चरन्तः ।
तीर्णाः स्वयंभीमभवार्षवं,
जनानहेतुनान्यानपि तारयन्तः ॥

शिष्टाचार की भाषा में तो सभी लोग सज्जन हैं। सियाराम मय सब जग जानी के एकात्मवादपरक सिद्धांत के अनुयायी सन्तों और भक्तों की दृष्टि इससे भिन्न नहीं है, किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से सज्जनों और खलों में भेद है। संसार में जो यत्किंचित साध्य की स्थिति है, वह सज्जनों की सज्जनता के कारण ही है। संसार की इस साम्यमयी स्थिति को बनाए रखने, और उसमें अभिवृद्धि करने के लिए महापुरुषों और महाकवियों ने लोकहिताय सज्जनों के लक्षण बतलाए हैं, यहाँ तक कि काव्य शास्त्र के आचार्यों ने सज्जनों के लक्षणों को महाकाव्य के वर्ण्य-विषयों में प्रमुख स्थान दिया है।

श्रीमद्भगवद्गीता में स्थितप्रज्ञ देवी सम्पदा और भक्तों के लक्षण बताते हुये सज्जनता के आवश्यक उपकरणों पर प्रकाश डाला है। भक्त- शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपनी अमर कृति रामचरित मानस में कई स्थानों पर सन्तों और सज्जनों के लक्षण बताए हैं। उनकी विनय पत्रिका के कबहुंक हों यह रहनि रहौंगे। श्री रघुनाथ कृपालु कृपा तें संत स्वभाव गहौंगे से आरम्भ होने वाले प्रसिद्ध पद में जो जीवनदर्शन उपस्थित किया गया है उसमें सज्जनता की ही व्याख्या की गयी है।

वैष्णव जन तो तेने कहिए जे पीड़ पराई जाणे रे वाले महात्मा गांधी के प्रिय भजन में वैष्णव भक्त के गुणों के मिस सज्जनों के ही गुण बताए गये हैं। प्रभु

इस भयंकर संसार सागर से स्वयं तरे हुये शान्त और महान् सज्जन पुरुष बसन्त के समान लोक हित करते हुये, और बिना कारण दूसरे लोगों को तारते हुये निवास करते हैं।

ईसामसीह ने अपने 'सरमन आनॅ दी माउन्ट' में सज्जनों को ईश्वर के कृपापात्र बताते हुये उनकी ही गुणगान किया है। कार्डीनेल न्यूमैन ने अपनी 'आइडिया ऑव एन युनीवर्सिटी' नामक अमूल्य पुस्तक में सज्जन जेन्टिलमैन की परिभाषा दी है। सज्जनों के लक्षण अनगिणत हैं। स्वयं भगवान रामचन्द्र ने अपने श्रीमुख से कहा है - 'सतन्ह के लच्छन सुन भ्राता। अगनित श्रुति पुरान विख्याता' ॥ सज्जनता की परम्परा बहुत लम्बी है। सारा सत्साहित्य उसी की ओर लक्ष्य करता है।

परहित-निरत

सज्जनों का सबसे पहला लक्षण है कि वे परहित के सदा अभिलाषी रहते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी के शब्दों में उनकी अभिलाषा यही रहती है 'पर हित-निरत-निरन्तर मन-कम-वचन नेम निवहाँगो।' वे सर्व वेद पुराणों के सार स्वरूप व्यासजी के वचनद्वय पर आधारित 'परहित सरिस धर्म नहीं भाई, परपीड़न सम नहिं अधमाई' वाले सिद्धांत को कभी नहीं भूलते। हित और अनहित के विचार में वे असावधानी नहीं करते हैं। जो व्यक्ति के शरीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति में समन्वित रूप से योग दें उसे वे हित की बात समझेंगे। वे हित की बात को सामने रखते हुये किसी आंतकवाद से काम न लेंगे। वे समझाने-बुझाने द्वारा व्यक्ति को सत्कार्यों की ओर प्रवृत्त करने में अधिक विश्वास करते हैं।

सज्जनों का सारा जीवन ही परोपकार के लिए होता है 'परोपकाराय सतां विभूतयः' गोस्वामी तुलसीदास जी ने परोपकार को श्रुति का सार कहा है और उसमें नरतनु की सार्थकता मानी है -

काज कहा नर तनु धरि सारयौ।

पर उपकार सार श्रुति को जो, सो धोखे हू न विचारयो ॥

वे 'आत्मनः प्रतिकूलानी परेषाम् न समाचरेत्' की नीति का निर्वाह करते हैं। वे पराये दुख में दुखी और पराये सुख में सुखी होते हैं-

विषय अलपंट सील गुनाकर ॥

पर दुख दुख सुख सुख देखे पर ॥

उपकृत का मान

सज्जन उपकार करते हुये भी अपने को ही उपकृत समझते हैं। योगीराज भगवान श्रीकृष्ण ने आर्त्त और अर्थार्थी भक्तों को भी उदार कहा है- 'उदाराः सर्व एवैते।' सज्जन याचक को यथासंभव 'नाही' नहीं करते, 'उनसे पहले वे मुए जिन मुख निकसत नाहिं।' वे याचक को दान से ही नहीं वरन् मान से भी संतुष्ट करते हैं। मर्यादापुरूषोत्तम श्रीराम चन्द्र जी के विषय में कहा गया है कि उन्होंने याचकों को

‘दान मान सन्तोषे’। सज्जन भगवान रामचन्द्र के इसी गुण को अपनाने में सुख का अनुभव करते हैं। राम भक्त सबको मान देता हुआ आप अमानी रहता है। ‘सबाहिं मानप्रद आप अमानी।’

निरभिमानता

‘विगत मान, सम सीतलमन’ सज्जनों को अभिमान छू तक नहीं जाता। ‘मन अभिमान न आणे रे’। वे अपने को निमित्त मात्र समझते हैं। वे अपने में कर्ता बुद्धि को आने नहीं देते। उनकी आंखें सदा नीची रहती हैं। ‘अधोऽधः पश्यत् कस्य महिमा नोपजायते’। अहसान जताना तो दूर वे उन संकेतों एवं लाक्षणिक और व्यंजनात्मक वाक्यों को जिह्वाग्र पर नहीं आने देते। जिनसे कि दूसरे को हीनता का अनुभव हो। वे सच्चे अर्थों में उदार होते हैं। अपने याचक को माँगने की हीनता को अनुभव नहीं करने देते। स्वयं ही दूसरे की आवश्यकतापूर्ति के साधन जुटा देते हैं।

अस को उदार जग माही।

बिन सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं ॥

सज्जन राम के इसी गुण का अनुसरण करता है। फिर भी निरभिमान रहता है। वह अपने किये हुये का श्रेय दूसरों को देता है। श्री कृष्ण जी ने गोवर्धन पर्वत को उठाने में ग्वालबालों का सहयोग लिया और उनको श्रेय दिया। दावानल को बुझा कर भी कह दिया कि घासफूस की आग थी। अपने आप बुझ गई। द्वारकाधीश के पद से भी दीन सुदामा के पैर पखारे ‘पानी परात को हाथ छुओ नहीं नैनन के जल सो पग धोये।’

परनिन्दा- विवर्जन

सज्जन पराई निंदा से बचता है। वह अपवादों के सुनने में अपना समय नष्ट नहीं करता। वह लोगों की कमजोरियों को सहानुभूति की दृष्टि से देखता है। पराई निंदा सुनना तो जहां तहां रहा, गोस्वामी जी के शब्दों में कपास की भांति ‘जो सहि दुख पर छिद्र दुरावा’ की नीति को अपनाता है, वह महात्मा गांधी द्वारा अपनाये गये तीन बन्दरों की भांति दूसरों की बुराई के लिए आंखों, कानों और मुंह पर हाथ रखे रहता है, वह दूसरों की बुराई न देखेगा, न सुनेगा और न कहेगा। वह पराये अवगुणों को नहीं वरन् गुणों को देखता है, ‘पर गुन, नहिं दोष कहौगो’। पराई बुराई को सुनना और कहना गोस्वामी जी ने खलों का लक्षण बतलाया है। खलों की वन्दना करते हुये उन्होंने कहा है -

वंदऊँ खल जस सेष सरोषा।

सहस बदन बरनइ पर दोषा ॥

पुनि प्रनबउँ पृथुराज समाना।

पर अध सुनइ सहस दस काना ॥

उत्तर कांड में भी खलों का वर्णन करते हुये गोस्वामी जी ने कहा है-

जहँ कहुं निंदा सुनहिं पराई ।

हरषहिं मनहुँ परी निधि पाइ ॥

पराई बुराई सुनने का आकर्षण बड़ा प्रबल होता है क्योंकि उसमें आत्मभाव की वृद्धि होती है। सज्जन ऐसी बड़ाई से बचता है जिसमें दूसरे की हीनता हो। रामचन्द्र जी को जब उनकी कृतियों का चित्रपट दिखाया गया और जहां उसने परशुरामजी की पराजय का प्रसंग आया उन्होंने लक्ष्मण जी से कह दिया कि जल्दी आगे बढ़ो। (देखिये महाकवि भवभूति कृत उत्तररामचरित)। इसी गुण पर बल देते हुये गोस्वामी जी ने मर्यादा पुरषोत्तम रामचन्द्रजी से संतों के लक्षण में कहलाया है-

निज गुण श्रवण सुनत सकुचाही। परगुण सुनत अधिक हरषाही ॥

पुजाना नहीं पूजना

सज्जन अपने पुजाये जाने की अपेक्षा दूसरों के पूजने के लिये अधिक प्रयत्नशील रहता है। वह सब प्रकार के गुरुडम से बचता है। दूसरों को पूजने में जो आत्मा की शुद्धि होती है वह पुजवाने में नहीं। पुजवाने में अभिमान के घर कर लेने की आशंका रहती है। श्रीकृष्णजी ने महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में अतिथियों के पैर धोने का काम अपने ऊपर लिया था। पूजा योग्य व्यक्तियों की पूजा मनुष्यों को ऊंचा उठाकर स्वयं पूज्य बनाती है। पूजन के लिए ही सज्जन उच्च स्थिति की अपेक्षा निम्न स्थिति में रहना स्थिति में रहना पंसद करते हैं। वे पिता, श्वसुर और स्वामी बनने की अपेक्षा पुत्र, बहु और सेवक बनना अधिक पंसद करते हैं-

सास ससुर गुरू मातु पितु प्रभु भयौ चहै सब कोइ ।

होनो दूजी ओर को सुजन सराहिअ सोइ ॥

पाने की अपेक्षा खोना

सज्जन दूसरों को ठगने की अपेक्षा आप ठगा जाना अधिक श्रेयस्कर समझता है-

कबिरा आप ठगाइए, और न ठगिए कोइ ।

आप ठगे सुख होत है, और ठगे दुख होइ ॥

सज्जन अपनी सफलताओं को अपनी हानियों और त्यागों एवं बलिदानों से आंकता है। उसको खाने में इतना सुख नहीं मिलता, जितना खिलाने में। वह पाने की अपेक्षा देना और खोना अधिक श्रेयस्कर समझता है। दूसरों के लिए अपने को खो देना ही वह पाना समझता है। वह किसी के धन की ओर दृष्टि नहीं डालता, वह

'परद्रव्येषु लोष्ठवत्' की नीति का पालन करता है। पराई विभूति देखकर उसे जूड़ी नहीं आती। इसको वह असज्जन का लक्षण समझता है-

काहु की जौ सुनहि बड़ाई।
स्वास लेहि जनु जूड़ी आई ॥

धन की अपेक्षा जन

सज्जन जन के आगे, उसकी सुख सुविधा के लिए धन की परवाह नहीं करता। धन से जन को महत्ता की बात श्री मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' में आई है। उन्होंने आर्यों के आदर्श बताते हुये रामचन्द्र जी के मुख से कहलाया है कि वह धन से जन की महत्ता बतलाने आये हैं। सज्जन धन को राष्ट्र की थाती समझ कर उसका अपव्यय, विशेषकर अपने लिये करना पसंद नहीं करते हैं। अपने क्षुद्र स्वार्थों के लिए जन से (विशेषकर स्वजन से) बिगाड़ना नहीं चाहते। वे अपने जन की सुविधा और मानसिक शांति के आगे धन को तुच्छ समझते हैं। वे अनार्जित धन को ग्रहण करना पाप समझते हैं। वे परिस्थिति का अनुचित लाभ उठाना नहीं जानते। वे दबे को दबाना एक दुष्कर्म मानते हैं। सज्जन दूसरों से दुष्प्राप्य वस्तुओं की याचना करके उनको धर्म संकट में नहीं डालना चाहते। वे पूर्णतः कृतज्ञ होते हैं। वे 'काम परे कच्छु और, काम सरे कच्छु और' की नीति नहीं बर्तते शीलगुणनिधान मर्यादा पुरषोत्तम श्रीरामचन्द्र जी की कृतज्ञता के गुण गाते हुये गोस्वामी जी 'वनय पत्रिका' में लिखते हैं -

केवट मीत कहे सुख पावत, बानर बंधु बड़ाई।

प्रेम कनौडो राम सो प्रभु त्रिभुवन तिहू काल न भाई।

तेरो रिनी हो कह्यो कपि सौ, ऐसी मानिही को सेवकाई ॥

सज्जन लोग भय की प्रीति नहीं वरन् प्रीति का भय करते हैं। भय की प्रीति आत्मा में हीनता लाती है। प्रीति का भय दोनों को ऊंचा उठाता है। प्रीति का भय प्रसन्नता देता है।

अहं का निषेध

सज्जन अपने अहं को न्यूनातिन्यून महत्व देते हैं। वे जीत को हार और को जीत समझते हैं, 'तुलसी तहाँ न जीतिए जहँ हूँ हारि।' रामचंद्र जी भरतजी को जीता हुआ दाँव दे देने में सुख का अनुभव करते थे। सज्जन अधिकार रखते हुए भी हुक्म चलाने की अपेक्षा विनय करना अधिक पसंद करते हैं। प्रभुत्व कामना की अपेक्षा वे आत्म समर्पण को अधिक वरिष्ठता देते हैं। वे अपनी बात पर वृथा हठ नहीं करते। जब तक कोई मौलिक भेद न हों और उस भेद में कोई भारी नैतिक हानि न होती हो,

15 / जीवन रश्मियाँ

तब तक वे अपनी बात पर आग्रह नहीं करते। अपनी बात को कभी वे उत्तेजना या आंतक से पुष्ट नहीं करते।

प्रेम का महत्व

सज्जन प्रेम बिना विचारे ही कर लेते हैं। मित्रता के लिए उनकी बाहुएँ सदा प्रसारित रहती हैं। अगर वैर करना ही हो, तो वे सोच विचार कर करते हैं। उनका बैर पानी की लकीर के समान होता है और प्रीति पत्थर की लकीर के सदृश होती है। तुलसीदास जी ने कहा कि पत्थर, बालू और जल की लकीरों की भांति सज्जन और दुर्जन की प्रीति बैर उलटे क्रम से होते हैं। सज्जन का प्रेम अमिट पत्थर की लकीर के समान और बैर जल की लकीरों के समान शिघ्र मिटने वाला होता है। दुर्जन का प्रेम जल की लकीरों के समान शीघ्र ही मिटने वाला तथा पत्थर की लकीर के सदृश अमिट होता है-

उत्तम मध्यम नीच गति पाहन सिकता पानि।

प्रीति परिच्छा तिहुन की बैर बितिक्रम जानि ॥

क्षमाशीलता

शक्ति होते हुए भी सज्जन क्षमा करने को तैयार रहते हैं। वे सदा 'अक्रोधेन जिने क्रोधम' की नीति बर्तते हैं। महर्षि भृगु की लात को सहकर यह कहते हुए कि आपके के पैर में चोट तो नहीं लगी त्रिभुवनपति भगवान विष्णु की महिमा और भी बढ़ गई-

क्षमा रोष के दोष गुन सुनि मनुमानहि सीख।

अविचल श्रीपति हरि भयै भूसुर लहै न भीख ॥

नीति में भी कहा- 'क्षमा रूपं तपस्विनाम्'। सज्जन ऊपरी भूलचूक की अपेक्षा हृदय की भावना की अधिक परवाह करते हैं। रामचंद्रजी के संबंध में कहा गया है-

रहति न प्रभु चित चूक किए की।

करत सुरति सय बार हिए की ॥

सज्जन यदि क्रोध करते भी हैं तो सात्विक क्रोध करत हैं। वे अपने प्रति किए हुए अपराध के लिये नहीं वरन समाज के प्रति किए हुए अपराध के लिये लोक संग्राहय रोष करते हैं। उनके रोष में बैर या बदले की भावना नहीं रहती।

मित्रता में उदार

सज्जनों के मित्रों का वृत्त विस्तृत होता है और शत्रुओं का अति संकुचित।

उनकी मित्रता स्वार्थवश नहीं होती। अकारण और अहैतुक मानवता के नाते होती है। जहां तक होता है वे अजात-शत्रु रहते हैं। उनके मित्र का मित्र, वह चाहे कितनी निम्न स्थिति का हो, उनका मित्र होगा, पर उनके मित्र का दुश्मन उनका दुश्मन न होगा। वे दुश्मन के साथ ऐसा व्यवहार करेंगे कि यदि कभी वह दोस्त हो जाएं तो उन्हें लज्जित न होना पड़े। वे यथाशक्ति श्रीमद्भगवद्गीता के निम्नोलिखित श्लोक के आदर्श का अनुसाराण करते हैं-

अद्वेषा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।

निर्ममो निरहंकारः समुदःखसुखः क्षमी ॥

सज्जन लड़ाई झगड़ों को कम करने के अर्थ भावों की ओर अधिक अभावों की ओर कम ध्यान देते हैं। वे उदार दृष्टि से देखते हैं। वे क्षुद्र स्वार्थों के लिए नहीं झगड़ते और संघर्ष की अपेक्षा सहयोग को अधिक महत्व देते हैं। जिन बातों में वे सहयोग कर सकते हैं उनमें अहं को बाधक नहीं होने देते। मतभेदों को वे शान्तिपूर्वक दूर करते रहते हैं।

अपने दोषों की स्वीकृति

सज्जन दूसरे के दोषों की अपेक्षा अपने दोष अधिक देखते हैं और उनकी स्वीकृति में संकोच नहीं करते। वे दूसरों को दोष देने से पूर्व यह देखते हैं कि दूसरों को दोष की ओर प्रवृत्त करने में उनका कितना हाथ है। पहले अपने दोष के निराकरण का प्रयत्न करते हैं, फिर दूसरों के दोष के निराकरण की अपेक्षा करते हैं। वे दूसरों के दोषों की अपेक्षा उनके गुणों को अधिक देखते हैं।

आलोचना में सहृदयता

वे दूसरों की आलोचना करना पसंद नहीं करते, यदि करते भी हैं तो सहृदयता के साथ। आलोचना करने में, चाहे वह संस्था की हो चाहे व्यक्ति की, वे हर्ष का अनुभव नहीं करते। वे आलोचना करते हैं दूसरों के सुधार की दृष्टि से न कि उनकी असफलता पर विजय गर्व से हँसने के लिये। आलोचना में दोषों के साथ वे गुणों पर पूरा-पूरा ध्यान रखते हैं। वे अपनी आलोचना से विचलित नहीं होते वरन् अपने सुधार के लिये उसका स्वागत करते हैं।

तोड़ने की अपेक्षा जोड़ना

सज्जन तोड़ने में नहीं जोड़ने में आनंद लेते हैं। वे विग्रह की अपेक्षा संधि के लिये अधिक प्रयत्नशील रहते हैं। 'जूझे ते भल बूझिबो भली जीति तें हरि'। सज्जन अपनी शक्ति पर गर्व नहीं करते, यदि करते भी हैं तो लाभ पहुँचाने की शक्ति पर न कि हानि पहुँचाने के सामर्थ्य पर। वे लड़ाई-झगड़े के कारणों को पहले से ही दूर

रखते हैं। लड़ाई हो भी जाए तो वे शीघ्र मेल करने और कराने के लिये तैयार रहते हैं। वे दूध- पानी को विलग करने के लिये काँजी नहीं बनना चाहते। प्रभु ईसा मसीह ने कहा था- ' मैं तोड़ने नहीं, जोड़ने आया हूँ '।

दूसरे के दृष्टिकोण को महत्ता

सज्जन दूसरे के दृष्टिकोण को अपने दृष्टिकोण की अपेक्षा अधिक महत्ता देते हैं। वे मानते हैं कि सत्य के एक से अधिक पक्ष होते हैं, इसलिए वे परधर्म -सहिष्णु होते हैं। वे प्रत्येक धर्म में सत्य के किसी-न किसी पक्ष के दर्शन करते हैं। वे धर्म लिये झगड़ा उठाकर उसके मानवतावादी लक्ष्य को विफल नहीं बनाते। वे अपने धर्म पर दृढ़ रहते हुए भी दूसरे के मत का आदर करना जानते हैं। किसी का जी दुखाना वे हिंसा समझते हैं। वे सत्य का प्रतिपादन करते हुए उसे अप्रिय नहीं बनाते। श्रीमद्भागवद्गीतोपदिष्ट वाणी का तप करते हुए अनुद्वेगकर तथा ' सत्य प्रियम् हितउच्यत ' वाक्य बोलते हैं। ' वे सत्य ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् मां ब्रूयात् ' सत्यम प्रियम् ' को सदा याद रखते हैं। वे अविश्वासी हों चाहे विश्वासी ' दूसरों पर अपना विश्वास लादना नहीं चाहते। वे अपने वचनों और कार्यों से दूसरों को मानसिक आघात नहीं पहुँचाना चाहते। इसको वे मानसिक हिंसा समझते हैं। उनके वचनों में एक आस्तिकता और कोमलता रहती है।

वे दूसरे के दृष्टिकोण का पूरा-पूरा अध्ययन किए बिना उससे वाद-विवाद में प्रवृत्त नहीं होते। दूसरे के दृष्टिकोण में जो सत्य का अंश दिखायी देता है उसको वे सहर्ष स्वीकार करने को तैयार रहते हैं। सत्य को वे एकांगी नहीं मानते, उसके दूसरे पक्षों को भी वे उतना ही महत्त्व देते हैं जितना अपने को, इतना नहीं वरन् अपने से छोटे व्यक्ति के दृष्टिकोण को वे कुछ अधिक महत्त्व देते हैं। सज्जन दूसरों को महत्त्व देने के लिये अपनी हानि भी कर लेते हैं। कहा जात है कि एक साधारण पंडित ने श्री चैतन्य महाप्रभु के एक न्याय-ग्रंथ में भूलें बतलाई, उससे सहमत न होते हुए भी उन्होंने उस ग्रंथ को उसकी प्रसन्नता के लिए नदी में प्रवाहित कर दिया। यह सज्जनता की परकाष्ठा थी।

वृथा हस्तक्षेप का अभाव

सज्जन जानते हैं कि एक काम को करने के कई तरीके होते हैं और हर आदमी अपनी शिक्षा, योग्यता और सूझ-बूझ के अनुसार उसे अच्छा करने का प्रयत्न करता है। ऐसे थोड़े ही लोग होते हैं जो जान बूझ कर काम खराब करते हैं। वे उनकी या तो उपेक्षा करते हैं या उन्हें न्याय-बुद्धि से दंड देते हैं। दंड भी वह न्यूनातिन्यून होता है। मूर्ख पर वे रोष नहीं करते, वे उसके साथ दया और सहानुभूति का वर्ताव

करते हैं।

सज्जन अपनी ही कार्य प्रणाली को महत्ता नहीं देते। इसलिए वे दूसरे के कार्य में अनावश्यक रूप से हस्तक्षेप नहीं करते। वे किसी के बने बनाए काम को बिगाड़ने या गोस्वामीजी के शब्दों में ' बिनु काज दाहिने-बाएं ' होने को घोर पाप समझते हैं। वे बात-बात में वृथा मीनमेख निकालकर दूसरों को हतबुद्धि नहीं बनाते। वे चलते बैल को अरई देना नहीं जानते। वे अधिकार जताने मात्र के लिए दोष दर्शन करना नहीं चाहते। साधारण दोषों की उपेक्षा कर अपनी बुद्धिमता पर शंका प्रकट किये जाने में बुरा नहीं मानते। दूसरे को आतंकित करने वाले अति बुद्धिमान की अपेक्षा दोषों की उपेक्षा करने वाले मूर्ख को वे अच्छा समझते हैं। वे पैनी दृष्टि रखते हुए भी आत्मसयम द्वारा दोषों की उपेक्षा करते हैं। यदि दोषों की ओर ध्यान दिलाना हो तो वे मधुर संकेतों या सहृदयतापूर्ण वचनों द्वारा करते हैं।

मानव सज्जनता में विश्वास

सज्जन मानव की मौलिक सज्जनता में विश्वास करते हैं। जब तक कोई मनुष्य सकारात्मक रूप से असज्जन प्रमाणित न हो जाए, तब तक वे उसे सज्जन ही समझते हैं। कभी-कभी इस सद्व्यवहार को गहरा आघात भी पहुँचता है। किन्तु वे इससे विचलित नहीं होते। अंग्रेजी में ' विशप्स केंडिल स्टैंड ' नाम का एक नाटक इसका अच्छा उदाहरण है। एक ईसाई धर्माचार्य ने एक चोर को अपने घर में आश्रय दिया था। उसने इस उदारता का बदला उसके चांदी के केंडिल स्टैंड चुराकर दिया। पकड़े जाने पर उस बिशप ने यह कहा कर कि वह उसकी चीज थी उसे दंड से बचा लिया। अंत में चोर का हृदय परिवर्तन हो गया।

व्यवहार की कोमलता

सज्जन अपने में ऐसे गुणों का अनुशीलन करते हैं जिनसे दूसरे के मन में भय और आतंक का निराकरण होकर सहज विश्वास हो जाए। उनका कोमल और सहृदयतापूर्ण व्यवहार दूसरों में स्फूर्ती और उत्साह का वर्द्धक होता है। वे लज्जाशील लोगों को प्रोत्साहन देते हैं और उनके आगे आने में सहायक होते हैं। जो लोग उनसे दूर हैं उनको निकट लाने का प्रयत्न करते हैं। दूसरों की कठिनाईयों को समझते हैं। उनकी न्यूनताओं और भूल की स्वयं व्याख्या कर लेते हैं और उनके कार्यों को उत्तम से उत्तम उद्देश्यों से प्रेरित मानते हैं। उनका स्वभाव शंकाशील नहीं होता। वे बिना सुनिश्चित प्रमाण पाए किसी पर आरोप नहीं करते। अपनी मृदुता और सहज शिष्टता से वे सबको अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं।

संतुलित जीवन

सज्जनों का जीवन संतुलित होता है। वे अतिवादों से बचते हैं। उनके जीवन में बौद्धिकता और भावुकता का संतुलन रहता है। वे न तो बौद्धिकता में इतने शुष्क हो जाते हैं कि उनके पास बैठना कठिन हो जाए और न भावुकता में इतना विभोर हो जाते हैं कि जीवन में कोई श्रृंखला ही न रहे। उनके जीवन में धर्म, अर्थ, काम का समन्वय रहता है। धर्म काम और अर्थ संग्रह में बाधक नहीं होता। उनकी धर्मिकता के कारण अर्थोपार्जन, वैध कामोपभोग तथा न्यायपूर्ण जीवन-चर्या में बाधा नहीं पड़ती। इच्छाओं को वे मारते नहीं, वरन् संतुलित रखते हैं। उनका धनोपार्जन धर्म समन्वित होता है। वे सम्यक आजीविका का उपार्जन करते हुए धन का न्यायोचित उपयोग भी करते हैं। वे जीने के कला को जानते हैं। उनका जीवन सादा होते हुए भी कलामय होता है, किंतु उनकी कला धर्म और अर्थ के कूलों में बँधी रहती है। न वे धर्म की अवहेलना करते हैं, और न आर्थिक आवश्यकताओं से बेखबर रहते हैं। सज्जनों का जीवन सब प्रकार से युक्त होता है। उनका आहार-विहार, स्वप्न और अवबोधना तो युक्त रहता ही है, उनकी वाणी संयमित रहती है।

युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टास्य कर्मसु।

युक्तस्वप्नाबबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥

उत्तरदायित्व का निर्वाह

सज्जन परहित-निरत रहते हुए भी अपने कर्तव्यों को नहीं भूलते। वे अपनी आजीविका से सम्बन्धित कर्तव्य को कर्तव्य मात्र न समझ कर उसे धर्मबुद्धि से और पूर्ण प्रसन्नतापूर्वक करते हैं। आवश्यकता पड़ने पर वे कर्तव्य से अधिक भी करने को तैयार रहते हैं। उनके कर्तव्य का क्षेत्र संकुचित सीमाओं से आबद्ध नहीं रहता। वे आदेशों की प्रतीक्षा नहीं करते। आदेश के अभाव को वे अपनी अकर्मण्यता के लिये कारण नहीं बनाते।

सज्जन अपने आश्रितों की सुख-सुविधाओं को नहीं भूलते और उन सब साधनों को जुटा देते हैं जिनमें उनके घर के लोग अपना गृह-प्रबंध सुविधापूर्वक चला सकें। सब कुछ पूरा करके बाकी जो कुछ शेष रहता है, उसके लिये भी वे अपना उत्तरदायित्व स्वीकार करते हैं। सज्जन कभी किसी कार्य को नीचा नहीं समझते। वे अपने लिये घर वालों से अधिक सुख-सुविधा के ग्रहण करने में संकोच करते हैं। वे गोस्वामी तुलसीदासजी के निम्नोलिखित दोहे को अपने पारिवारिक जीवन का आदर्श मानते हैं-

मुखिया मुख सो चाहिए, खान पान कहूँ एक।

पालइ पोषइ सकल अंग, तुलसी सहित विवेक ॥

सज्जन अपनी पारिवारिकता और सामाजिकता में समन्वय करना जानते हैं। उनके घर के जीवन और बाहर जीवन में सामंजस्य रहता है। दोनों ही जीवन सेवा-भाव से प्रेरित होते हैं।

कथनी और करनी में एकाता

सज्जनों की कथनी और करनी एक होती है। वे 'करतब बयास वेष मराला' का परिचय नहीं देते। उनके मन, वचन और कर्म में एक सूत्रता रहती है। उनके जीवन का सामंजस्य संसार में भी सामंजस्य लाने में योग देता है।

सज्जन अपनी कमजोरियों के लिये तो लज्जाशील और नतमस्तक रहते हैं अपने गुणों पर भर नहीं अकड़ते। वे स्वामी होकर भी सेवक वृत्ति धारणा करने में सुख का अनुभव करते हैं। वे स्वयं अपना काम आप ही करना पंसद करते हैं। वे स्वयंदासा: तपस्विनः' के सिद्धांत के अनुयायी होते हैं।

प्रसन्नता के प्रचारक

सज्जन सुमति का प्रचार कर चारों ओर प्रसन्नता का वातावरण उपस्थित कर देते हैं। वे स्वयं प्रसन्न रहते हैं और दूसरों को भी प्रसन्न रखने का प्रयत्न करते हैं। उनकी प्रसन्नता आलस्य और अकर्मण्यता की प्रसन्नता नहीं होती वरन कर्तव्य - पालन की प्रसन्नता होती है। जो कुछ वे करते हैं प्रसन्नापूर्वक करते हैं, अहसान जता कर नहीं, न वे काम करते हुए बड़-बड़ाते हैं। हर एक काम को सेवा-भाव से ही करते हैं। वे सुमति के प्रचारक होते हैं। ऐसे सज्जनों का आस्तित्व संसार के लिये वरदान सिद्ध होता है। ईश्वर करे हमारे देश में ऐसे सज्जनों की वृद्धि हो जिससे संसार में सुमति बढ़े और उसके साथ संपन्नता भी। 'जहां सुमति तहं संपति नान'। हमारा देश सुमति और संमपन्नता से संपन्न हो।

वश्वि मन संगठन हो रहा विकसित,
नव जीवन संचरण ऊर्ध्व, भू विस्तृत
नव्य चेतना-केतु फहराता,
सतरंग द्रवित दिगंतर,
आदर्शों के पोत बढ़ रहे,
पार अतल भव सागर।
स्वर्ग भूमि पर भारत,
जन मन धरणी सुन्दर,
अंतर ऐश्वर्यों से मंडित,

मानव हो देवोत्तर ॥

विशेष

संक्षेप में मानवता के लक्षण ही सज्जनता के लक्षण हैं। इस निबंध का सार रूप एक संस्कृत श्लोक नीचे दिया जा रहा है-

ये दीनेषुदयालः स्पृशति यानल्पोअपि न श्रीमदो ।
व्यग्रा ये च परोपकारकरणे हृष्यन्ति ये याचिताः ॥
स्वस्था संति च यौवनमदमहाव्याधि प्रभोपोअपि ये ।
तैर्स्तभैरिव सुस्थिरै किलभारक्लांता धरा धार्यते ॥

अर्थात् जो दीनों के प्रति दयालु हैं और जिनकों जरा-सा भी धन का मद स्पर्श नहीं करता है जो लोग परोपकार करने के लिए व्यग्र रहते हैं और जो मांगे जाने पर प्रसन्न होते हैं (याचक हमारे ऊपर उपकार करता है कि वह स्वयं हमको सेवा करने का अवसर देता है)। वे लोग उनमें से नहीं होते जो कुछ मांगने पर मुंह बना लेते हैं। जो कि यौवनमद की महाव्याधि के प्रकोप होने पर भी स्वस्थ बने रहते हैं उन्ही सुदृढ़ स्तंभो के सहारे यह भार क्लांत पृथ्वी सधी रहती है।

उच्च जीवन-स्तर

उदर-पूर्ति मनुष्य की एक मौलिक आवश्यकता है, किंतु वह रोटी मात्र से जीवित नहीं रहता है। पेट तो शूकर-कूकर, कृमि और कीटपतंग भी भर लेते हैं, किंतु उनका जीवन संपन्न नहीं कहा जा सकता। आदि काल से मनुष्य ने प्रकृति से ऊंचा उठना सीखा है और अपने बुद्धि-बल के द्वारा वह उत्तरोत्तर उन्नति करता गया है। आजकल के संपन्न भद्र पुरुष को पेट भरना ही पर्याप्त नहीं वरन् वह अब चाहने लगा है। नयनाभिराम ढंग से सजे हुए एवं हास-विलास से सरस और अस्वादमय षट्स व्यंजन। गिरि गुहाओं में न रह कर वह चाहता है स्वच्छ, हवादार एवं विद्युत प्रकाश से जगमगाते, चित्र, मूर्तियों, पर्दों आदि सज्जोपकरणों से अलंकृत, रंग बिरंगे पुष्पों से सुवासित हरे-भरे उद्यानमय विशाल भवन। उसके जीवन की आवश्यकताएं यहीं तक सीमित नहीं रहती। भवनों के साथ उसे चाहिए वर्दियों से चुस्त नौकर-चाकर, साईकिल, मोटर, रेल और हवाई जहाज आदि यातायात के साधन तथा खेल-कूद, आमोद-प्रमोद के लिए टेनिस, फुटबाल, बेडमिंटन, रेडियो, सिनेमा आदि मनोरंजन के साज सामान। बल्कलवस्त्र धारण न कर वह धवलधौत खद्दर और मलमल से संतोष नहीं करता वरन् वह चाहता है चीनांशुक, फर, नायलोन और कांच के बने हुए अद्यतन डिजायन और फैशन के कटे-छटे कपड़े।

अब प्रश्न यह होता है कि क्या यह सब आडम्बर वास्तव में आवश्यक हैं? एक पक्ष तो मानव की कार्यक्षमता और उसके आत्मसम्मान बढ़ाने के लिये जीवन स्तर का ऊंचा उठाना नितांत आवश्यक नहीं तो परम वांछनीय समझता है। वह कतिपय तथ्यों के आधार पर कहता है कि अंगरागादि श्रृंगार के प्रसाधन, चीनांशुक निर्मित वस्त्र, रथ, हाथी, घोड़े आदि वाहन आमोद-प्रमोद, क्रीड़ा-कौतूहल और कलाविलास की समाग्रियां प्राचीन काल में भी थीं। रामायण, महाभारत, कदाम्बरी, नैषधादि काव्य ग्रंथ इसके मुखर साक्षी हैं। फिर आजकल के मानव ने ही क्या बुराई की है जो वह इन सुख-सुविधाओं से वंचित रखा जावे।

दूसरा पक्ष यह कहता है कि सुखी जीवन का रहस्य आवश्यकताओं को न्यूनातिन्यून करने में है। 'भाग्यवंतः खलु कौपीनवंतः।' आवश्यकताओं का अंत

नहीं। उनका विस्तार सुरसा के मुख की भांति बढ़ता ही जाता है। आवश्यकताएं जितनी बढ़ती हैं, उतना ही जीवन संघर्ष और भ्रष्टाचार एवं बेईमानी बढ़ती है। सरल जीवन और उच्च विचार का आदर्श हमारे सामने रखा जाता है। कहा जाता है कि गरीब देश में विलासिता के लिए क्या स्थान है? इसके अतिरिक्त जितना हम सभ्यता की श्रेणी में ऊंचा चढ़ते जाते हैं उतना ही हम प्राकृति के सुखद संपर्क से वंचित होते जाते हैं। सभ्यता के काया कष्ट कम करने वाले उपकरणों से हमारी प्राकृति शक्तियों का ह्रास हो रहा है। मनुष्य की आत्म निर्भरता कम हो रही है और उसका नैतिक पतन भी हो रहा है। महात्मागांधी और आचार्य विनोभा भावे इस विचारधारा के जीवित उदाहरण हैं।

उच्च जीवन स्तर अथवा विलासिता के विरोध में जो बातें कहीं जाती हैं उनमें कुछ तथ्य अवश्य हैं। उनसे लाभ उठाया जा सकता है। वे हमारे औचित्य की सीमा के अतिक्रमण में ब्रेक का काम देंगी। बिना उच्च विचारों से उच्च जीवन स्तर सफेद पुती हुई कृमि संकुल कवर की भांति है। उन्नति उभय पक्षी होनी चाहिए। उच्च जीवन स्तर के साथ उच्च नैतिक स्तर आवश्यक हैं, तभी हमारे जातिय और वैयक्तिक चरित्र का मान हो सकेगा।

यह सब स्वीकार करते हुये यह भी मानना पड़ेगा कि और देशों के साथ सभ्यता की दौड़ में भारत पीछड़ा नहीं रह सकता। भारत अपनी तीन लोक से न्यारी मथुरा नगरी नहीं बना सकता। हमारी राष्ट्रीय सत्ता के लिए विदेशों से सम्पर्क आवश्यक है। उनसे समकक्षता प्राप्त करना होगा। इसके अतिरिक्त उच्च स्तरीय जीवन का भी अपना मूल्य है। स्वच्छ हवादार मकान, सुंदर कलामय चित्र और मूर्तियां, सुरभित नयनाभिराम उद्यान, हंसते खेलते क्रीड़ा कौतूहल करते हुये बाल गोपाल, सेवा परायण नौकर चाकर, नृत्य, गीत वाद्य, रेडियो और सिनेमा आदि तथा टेनिस, फुटबाल आदि मनोरंजन के साधन तथा साईकिल, मोटर आदि वाहन जो सुख सुविधाएं प्रदान करते और उनसे जो चित्त को प्रसन्नता और विश्राम मिलता है वे सब बातें मनुष्य की कार्यक्षमता और उसका आत्म सम्मान बढ़ाने में सहायक होती हैं। ये सब अपना मूल्य रखती हैं ये सब जीवन के उत्साह और उल्लास को बढ़ाने में सहायक होती हैं और अपने सुखद व वैविध्य से जीवन की ऊब कम करने में योग देती हैं। हर समय कमर कसें रहना और धनुष की प्रत्यंचा चढाये रखना मानसिक स्वास्थ्य के लिए अच्छा नहीं। दावतों, पार्टियों और हास विलास में जो कमर ढीली कर ली जाती है उससे नई स्फूर्ति मिलती है। ये सब वस्तुएं गीतोपदिष्ट 'धर्मविरुद्ध काम' की संज्ञा में आती हैं। इनका स्वस्थ मात्रा में अनुशीलन तभी हितकर सिद्ध होगा जब उसके साथ कर्तव्य पालन की प्रसन्नता भी लगी हो। नहीं तो जीवन की

यह चमक दमक दिखावटी और मुलम्मे की सी रहेगी।

ऊंचे जीवन स्तर के विरूद्ध प्राकृतिक जीवन से दूर हटते जाने की जो बात कही गई है, उसके सम्बन्ध में इतना ही निवेदन है कि हिन्दू धर्म में तीन आश्रम तो प्रकृति के सीधे संपर्क में बिताने के लिए निर्दिष्ट हैं। किन्तु एक आश्रम अर्थात् गृहस्थ आश्रम में जीवन की सम्पन्नतामय भोग विलास को एक वैध मात्रा में धर्मानुकूल माना है। इक्ष्वाकु वंश के राजाओं के सम्बन्ध में कहा गया है :- 'शैशवेऽभ्यस्त विद्यानाम् यौवने विषयैषणिं, बार्द्धक्ये मुनि वृत्तीनाम्, योगेनान्तेतनुत्यजाम्' अर्थात् बाल्यकाल में विद्या का अर्जन करते थे, यौवन में सुख भोग और विषयों की इच्छा करते थे, बुढ़ापे में मुनियों की वृत्ति धारण करते थे, अंत में योग से ' (रोग से नहीं) 'शरीर त्यागते थे। ऐसे लोगों की कुल गाथा कविकुलगुरु कालिदास ने गाई थी।

आजकल वैसा तो काल विभाजन संभव नहीं किन्तु आजकल के सम्पन्न और संकुल जीवन में भी प्रकृति से संपर्क बनाए रखने की गुंजाईश रखी जाती है। लोग प्रायः प्रातः वायु सेवन के लिए उन्मुक्त वातावरण में विचरण करते हैं, टेनिस, क्रिकेट और फुटबाल आदि खेल घर के घेरे के बाहर ही खेले जाते हैं। प्रायः घरों में छोटा पूरा उद्यान नहीं तो दो चार हरे गमले और फूलदान प्रकृति से संपर्क बनाये रखने में सहायक होते हैं। लोग यदा कदा वन भोज को भी जाते हैं। 'यथा संभव वन भोज में प्राकृतिक साधानों से ही काम चलाना चाहिए'। पर्वतारोहण का अभ्यास भी किया जाता है। यह तो सब को सुलभ नहीं होती किन्तु नौका विहार, गंगा स्नान, नदी, तालाबों में जलावतरण करते हैं। सम्पन्न घरों में पशु पक्षी, मृग-छौने, कहीं-कहीं सिंहशावक भी, तीतर बटेर, कबूतर पाले जाते हैं। विरति विवेक सहित श्रुति सम्मत हरि भक्ति पथ के अनुयायी गोस्वामी तुलसीदास जी के, अपने रामराज्य के वर्णन में कबूतरों को स्थान मिला है। ये सब वस्तुएं सम्पन्न और उच्च स्तरीय जीवन की अंग मानी जाती हैं। इनसे जीवन की सरसता और उसका उल्लास बढ़ता है।

वैसे तो आवश्यकताओं और विलास वस्तुओं की पार्थक्य रेखा निर्धारित करना कठिन है। किन्तु जो वस्तुएं विलासिता की कही जाती हैं, वे भी किसी अंश में क्षम्य हैं क्योंकि वे देश के कला कौशल को प्रोत्साहन दे बेरोजगारी को रोजगार दिलाती हैं। अगर अपने देश का बना हुआ महीन कपड़ा हम खुद न पहनें और उसकी खपत दूसरे देशों में ही करें तो उन देशों के साथ अन्याय होगा। 'आत्मनःप्रतिकूलानि परेषाम् न समाचरेत्' यह बात जरूर है कि विलास की वस्तुएं यथासंभव ही नहीं वरन् आवश्यक रूप से देशी हों। विदेशी वस्तुओं पर हम गर्व नहीं कर सकते। श्रंगार के प्रसाधन कुछ मात्रा में अवश्य विदेशी होते हैं। उनसे

बचना चाहिए।

विलास की वस्तुओं के सम्बन्ध में दूसरी बात यह है कि उनमें आसक्ति न उत्पन्न होने पावे। हम उनके दास न बनें वरन् वे हमारी कृपा पर अवलम्बित रहें। इसी के साथ यह कह देना आवश्यक है कि विलास की वस्तुएं अक्षम्य और अनुशीलन योग्य हैं जहां तक वे हमारी प्राकृतिक शक्ति को नष्ट न करें और कार्य क्षमता में बाधा न डालें। अनावश्यक आडम्बर की वस्तुएं, जैसे बिजली की धूप विशेषकर भारत में, मदिरापान आदि व्यसन वर्ज्य होना चाहिए। जो समय मशीनों के उपयोग के कारण बचे वह आलस्य या प्रमाद में न जावे वरन् उसका सदुपयोग हो।

तीसरी बात जो विलासिता की वस्तुओं के सम्बन्ध में आवश्यक है वह यह है कि पैर सौर से बाहर न हो जावे। घर फूक तमाशा देखना उचित नहीं। हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि हम अपनी विलासिता में अपने आश्रितों की उचित आवश्यकताओं की पूर्ति में बाधक तो नहीं हो रहे हैं। हम उतना ही खर्च करें जितना की न्यायपूर्ण ढंग से अर्जित कर सकें। भ्रष्टाचार या 'वालाई आमदनी' से प्राप्त धन के सहारे मौज उड़ाना पाप है।

हमारे यहां यह भी एक विचारधारा है कि जो मनुष्य विलास की वस्तुओं का अनुशीलन करता है वह समाज के अन्य लोगों को उनके उपभोग की वस्तुओं से वंचित रखता है। आचार्य विनोभा भावे दही खाने को भी अनधिकार चेष्टा समझते हैं। जब और लोग दही नहीं खा सकते तब उनको भी अधिकार नहीं कि वे दही खावें। यह उदार भावना सराहनीय अवश्य है और इस गरीब देश में हमको मितव्ययता सेकाम लेने का पाठ सिखावेगी। किन्तु यह व्यावहारिक नहीं है क्योंकि हर एक आदमी की परिस्थितियों के अनुकूल उसकी आवश्यकताएं होती हैं। उनकी यदि अवहेलना की जावे तो उसकी कार्यक्षमता में अंतर आ जावेगा और वह समाज का उतना उपकार नहीं कर सकेगा, जितना कि वह उन सुख सुविधाओं को पाकर कर सकता।

इस उदार भावना की पूर्ति के लिए 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' अर्थात् त्याग के साथ भोग की ईशावास्य वृत्ति को अपनाना आवश्यक है। मनुष्य जितना त्याग कर सके उतना ही श्रेयस्कर है। किन्तु गृहस्थ के लिए धन का अर्जन करना और उसका वैद्य उपभोग करना पाप नहीं है। 'अजरामरवत प्राज्ञोविद्यामर्थन्वचिन्तयेत्' अर्थात् अपने को अजर और अमर समझ कर बुद्धिमान को विद्या और धन का अर्जन करना चाहिए। धन की तीन गतियां मानी गई हैं दान, उपभोग और नाश। जो न देता है और न उपभोग करता है उसका धन नाश को प्राप्त होता है।

धन का वैद्य उपभोग बुरा नहीं। व्यक्ति का जीवन स्तर ऊंचा उठने से समाज

का गौरव बढ़ता है किन्तु उसमें भी 'अति सर्वत्र वर्जयेत' का ध्यान रखना चाहिए। यह ध्यान रखते हुये मनुष्य को उच्च स्तरीय जीवन की अंकाक्षा का हनन नहीं करना चाहिए वरन उसे प्रोत्साहन देना वांछनीय होगा।

अपने जीवन स्तर को ऊंचा रखने में जो प्रयत्न किया जाये उसकी सराहना करना समाज के लिए लाभदायक होगा। बहुत से लोग धन के अभाव में नहीं वरन् प्रचुर धन होते हुये भी लोभवश और उससे भी हीनतर आलस्य की वृतिवश अपना जीवन ऊंचा नहीं उठा पाते। निन्द्य समझे जाने चाहिए। वीरक्ति की ओट में आलस्य का समर्थन उचित नहीं, यह लोगों को धोखा देना होगा।

उच्च-स्तरीय जीवन व्ययसाध्य अवश्य है किन्तु यदि मनुष्य को जीवन की कला आती है तो थोड़े प्रयत्न करने से ही अल्प व्यय में भी उच्च-स्तरीय जीवन व्यतीत कर सकता है। अच्छे मकान के लिए विशालता आवश्यक नहीं। स्वच्छता और व्यवस्था वांछनीय है। सजोपकरण चाहे कीमती भी हो और संख्या और मात्रा में प्रचूर हो। किन्तु यदि धूल के आवरण आदि में विशिष्ट हो तो उनका न होना श्रेयस्कर है। व्यवस्था और कला से सुजित स्वच्छ परिष्कृत घर रहने वाले को ही प्रसन्नता नहीं देते वरन् घर के संपर्क में आने वाले अन्य लोगों में भी प्रसन्नता विकीरण करते हैं। स्वच्छ और परिष्कृत जीवन एक सामाजिक कर्तव्य है। इसकी अवहेलना करना उचित नहीं। अच्छे घर जातीय संस्कृति के भी परिचायक होते हैं। हमको अपने रहन और खाने पीने के ढंग में भी सुधार करना चाहिए। किन्तु अपनी पद्धति को अपनी जातीय विशेषताओं और संस्कृति के अनुकूल ही बनाए रखना उचित है। भोजन की शुद्धता और उसके खाने की सुव्यवस्था उसके पाचन और आत्मसत होने में सहायक होती है।

व्यक्ति की दृष्टि से भी उच्च जीवन स्तर मनुष्य की कार्यक्षमता बढ़ाती है। नई सभ्यता के उपकरण बिजली के पंखे आदि जहां वे किसी मात्रा में आत्मनिर्भरता को कम करते हैं वहां वे शर्म के कष्ट को कम कर उत्पादन की मात्रा को बढ़ाते हैं। इन उपकरणों के सुलभ होते हुये भी हमको अपने शरीर को पर्याप्त मात्रा में सक्रिय रखने की आवश्यकता है।

हमारे वस्त्रों की अनिन्द्य स्वच्छता और घर की साज सज्जा भी अधूरी रहेगी। यदि उसमें साहित्य, संगीत और कला की चर्चा को स्थान न हो उसमें भी सात्विकता आवश्यक है। उसी के साथ सामंजस्यपूर्ण वातावरण बड़ों की ओर से छोटे की सुख सुविधाओं और उनकी आंकाक्षाओं की पूर्ति की चिन्ता तथा छोटों की ओर से बड़ों के प्रति विनय पूर्ण व्यवहार उचित स्तरीय जीवन में चार चांद लगा देता है। व्यवहार की कर्कशता सौंदर्य की विघातक होती है। श्रृंगार और वीभत्स का

सहज विरोध है। भले घरों में आतिथ्य सत्कार वैयक्तिक प्रसन्नता और सौहार्द को बढ़ाने वाला होता है। तीज त्यौहार उत्सवों और पर्वों का मनाना भी जीवन के उल्लास को बढ़ा कर उसे गति प्रदान करता है।

घर से लगा हुआ हरा भरा हुआ उद्यान उपयोगिता और सौंदर्य दोनों ही दृष्टियों से उपादेय है। उद्यान की देखभाल और साज संभाल स्वास्थ्यप्रद व्यायाम के साथ एक निरापद कम खर्च वाला सदव्यवसन भी है। उद्यान प्रेम प्रकृति से हमारा सहज सम्बन्ध बनाये रखने में सहायक होता है। वह नेत्रों को विश्राम देने के साथ चित्त को भी प्रफुल्लता प्रदान करता है। वस्त्र हमारे शरीर के अंग नहीं तो शीतोष्ण से उसकी रक्षा करने वाले और शोभा बढ़ाने वाले होते हैं। बाहर का प्रभाव भीतर पर पड़ता है। स्वच्छ वस्त्रों से अच्छादित स्वच्छ शरीर चित्त को स्फूर्ति और प्रसन्नता प्रदान कर मनुष्य की कार्यक्षमता बढ़ाता है। वस्त्र हमारी सुख सुविधा के ही साधन नहीं होते। वरन् हमारे आत्म सम्मान को बढ़ाते हैं और सहज में सभ्य समाज में प्रवेश सुलभ करवा देते हैं। मलिन वस्त्र स्वास्थ्य के लिए ही हानिकारक नहीं होते वरन् वे आत्मग्लानि भी पैदा करते हैं। जिससे स्फूर्ति ह्रास होता है। हमको कपड़ों के सौंदर्य के साथ इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वे आराम देने वाले भी हों और हमारी स्वच्छन्द गति में बाधक न हों। नौकर चाकर यदि अच्छी तरह से रखे जावें तो काम का भार हल्का करने में भी विशेष सहायक हो सकते हैं। इस बात का ध्यान रखते हुये कि उनके कारण हम अपनी सहज कार्य शक्ति को खो न बैठे उनसे उपयोगी कार्यों में सहायता लेनी चाहिए। नौकर अपने मालिक की गौरव वृद्धि करते हैं। मालिक को भी दो एक आदमियों की बेरोजगारी दूर करने का श्रेय और संतोष मिल जाता है। नौकर चाहे एक ही हो किन्तु जो रखा जावे संतुष्ट रखा जावे। थोड़े पैसों की बचत की अपेक्षा नौकर का संतोष अधिक मूल्यावान है।

वाहन भी सम्पन्न जीवन के अंग हैं। कुछ लोगों के लिए जैसे डाक्टरों, वकीलों, बड़े व्यापारियों के लिए आवश्यक होते हैं। वे उनके कार्यों को सुचारू रूप से चलाने में सहायक होते हैं। वाहन के सम्बन्ध में और सब बातों की भांति अपनी आय का ध्यान रखना चाहिए। वित्त के बाहर खर्चीला वाहन विलासिता की कोटि में आता है और कभी-कभी एक अभिशाप सिद्ध होता है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि जीवन स्तर को ऊंचा रखना एक सामाजिक कर्तव्य है। उससे समाज में हमारा सम्मान ही नहीं बढ़ता वरन् चित्त की स्फूर्ति और प्रसन्नता के साथ कार्यक्षमता भी बढ़ती है। किन्तु इस सम्बन्ध में नीचे की बातों को सदा ध्यान में रखना चाहिए:-

1. उच्च जीवन स्तर रखने में पैर, सौर से बाहर न होने पावें और उसके

कारण भ्रष्टाचार और बेईमानी का आश्रय न लेना पड़ा।

2. जीवन के भौतिक स्तर के साथ हमारा नैतिक और आध्यात्मिक स्तर भी ऊंचा रहे। विनय, शील और शालीनता में अंतर न पड़ने पावे और जीवन की सात्विकता बनी रहे।

3. प्रकृति से हमारा संपर्क न छुटे।

4. हम ऊच्च जीवन की सुख सुविधाओं के दास न बन जावें और हममें पंगुता न आ जाये।

5. हमारे वस्त्र, अंलकरण, सजोपकरण आदि सब स्वदेशी हों जिन पर हम गर्व कर सकें।

घरेलू लड़ाई झगड़े

धर्मपरायण भारत में ग्रहों की शांति का बड़ा महत्व है। विद्यारम्भ, विवाह आदि संस्कार ग्रह शांति के बिना सम्पन्न नहीं होते। अभी स्पूतनिक आदि कृत्रिम उपग्रहों की तो नहीं, काशी के आधुनातम ज्ञान के पोषक ज्योतिर्विद पंडितगण हर्शल, नैपच्यून आदि नवानुसंधानित ग्रहों के उतार चढाव और उनके फलाफल से लक्ष्मी जी के कृपापात्र श्रद्धालु यजमानों को अवगत करवा देते हैं और उनके शमनोपाय भी बता देते हैं। ग्रहों के प्रकोप से उत्पन्न उनके समान ही विनाशकारी प्रभाव वाले युद्धों की भंयकर विभीषिका से बचाने के उपाय भी सोचे जाते हैं। किन्तु नित्य प्रति घर के स्निग्ध प्रांगण में छिड़ने वाले शनि की दशा के से दीर्घकालीन प्रभाव वाले ग्रह कलह कांडों के शमनोपायों पर कम विचार होता है। उनके द्वारा प्रातःकीलन मांगलिक कार्यों से पूत पावन बनाया हुआ सारा साम्यमय वातावरण दूषित हो जाता है और काव्य कला की स्फूर्ति और कार्यक्षमता के स्रोत सूख जाते हैं। जिससे राष्ट्र की अंवाछनीय एवं पूर्ति की क्षमता न रखने वाली क्षति होती है।

ग्रह कलह और उसके रूप

घर-घर मिट्टी के चूल्हे हैं और वैसे तो जहां चार बर्तन होते हैं, वे खटकते हैं किन्तु कभी-कभी साधारण खटपट के भी भीषण परिणाम हो जाते हैं। इसलिए अग्रिशेष, रोगशेष और ऋणशेष की भांति ये उपेक्षणीय नहीं हैं। बड़ी बातों की ओर बड़े लोग ध्यान दें, अन्तर्राष्ट्रीय ग्रह चक्र को राजनीतिज्ञ संभाले, किन्तु यदि ग्रह में उठने वाले बंबडरों का शमन किसी मात्रा में हो सके तब भी बहुत कुछ राष्ट्रीय हित सम्पन्न हो सकता है।

जहां संपत्ति होती है वहां तो और जहां संपत्ति नहीं होती है वहां भी थोड़ी सी सुख सुविधाओं अथवा किसी वस्तु के उपभोग की अलग-पिछल और कुछ नहीं तो अपनी बात रखने के लिए ही, भाई भाईयों में मन मुटाव हो जाते हैं। परिवार के लोग पड़ोसियों से भी बदतर हो जाते हैं, चन्द्रमुखी कलमुँही ही प्रतिबत होने लगती है और पति पत्नी का ६३ का सा चांद-चकोरी सम्बन्ध ३६ का सा बन

जाता है। परस्पर आकार्षण विद्युतिय समान ध्रुवों का-सा विकर्षण का रूप धारण कर लेता है। जरा-जरा सी बात पर बोल-चाल बंद कर देना, मुखमुद्रा बदल जाना, आंखों में सुर्खी आना, अधर-पुटों का फड़कना और बिना कोटी के भू-चाप चढ़ना, इन अनुभवों का लौकिक अनामंत्रित अनुभव कभी न कभी तो शांत और समाहित स्थितप्रज्ञों को भी मिल जाता है। किन्तु साधारण स्थिति के लोगों के यहां तो यह नित्य का व्यापार है। मिनमिनाने और बरबराने से लगा कर स्वानवत् गुरगुराने और शार्दूल गर्जन की आवाज तक सुनाई पड़ने लगती है। मुंह फैलाये बैठे रहना, मौनव्रत अपनाना, मलिन वस्त्र धारण किए रहना, भूख हड़ताल कर देना गृह कलह में शीतयुद्ध का स्थान ले लेते हैं। व्यंग्य वाणों तथा एक दूसरे का दिमाग खराब बताने से लगा कर भले घरों में यह गरम युद्ध स्वरो के आरोहण अवरोहण तक ही सीमित रहता है। क्रोध, अमर्ष, कलह और बैर की इन विभिन्न श्रेणियों की सोदाहरण वार्ताएं जो सूक्ष्म विश्लेषण वाले मनोविज्ञान के आचार्यों की पकड़ से भी बाहर रहती हैं- साधारण लोगों को बिना रेडियो और टेलीविजन के श्रवण और दर्शन को मिल जाती हैं।

संघर्षों का पक्षभेद

सभी संघर्ष प्रायः तीन प्रकार के होते हैं- व्यक्ति-व्यक्ति के, व्यक्ति और समुदाय के, जैसे राज्य और राज्यद्रोही व्यक्ति के, समुदाय के जैसे हिन्दु मुसलमानों के। घरेलू लड़ाईयां प्रायः व्यक्ति-व्यक्ति की होती हैं, उन व्यक्ति केंद्रित लड़ाईयों में कभी-कभी घर के लोग बंट जाते हैं। कोई एक पक्ष को पोषण देता है, तो कोई दूसरे को कभी-कभी व्यक्ति और समुदाय अर्थात् सारे कुटुम्ब से संघर्ष होता है। यह तब होता है जब एक व्यक्ति की विचारधारा अथवा रहन-सहन की शैली या स्तर घर के अन्य लोगों से भिन्न हों जैसे किसी दुकानदार के परिवार में एक लड़का पढ़-लिखकर प्रोफेसर हो गया हो या किसी कांग्रेसी परिवार में एक लड़का कम्युनिस्ट हो गया हो गया हो। इन लड़ाईयों में परिवारिक स्नेह अक्षुण्ण रहता है। इनमें एक-दूसरे को आर्थिक शारीरिक हानि पहुंचाने की बात कम रहती है। ये संघर्ष विशेष चिंता के कारण तो नहीं होते, इनमें वाद विवाद प्रतियोगिता की भांति या उससे कुछ अधिक गर्मा-गर्मी के साथ अपना घोड़ा आगे बढ़ा ले जाने की बात होती है, तब भी ये मानसिक शान्ति भंग करने के लिये पर्याप्त होते हैं और कभी-कभी इनके भी भीषण दुष्परिणाम हो जाते हैं। कुटुम्ब से बाहर के लोगों की लड़ाईयां अधिक हानिकारक होती हैं।

दो प्रकार के कारण

गृह-कलह के अनेक कारण हो सकते हैं। उनमें कुछ साधारण और व्यापक

और कुछ असाधारण और विशेष हैं। असाधारण कारणों में कुछ तो व्यापक परिस्थितियों से संबंध रखते हैं और कुछ वैयक्तिक होते हैं। पश्चिम के संपर्क के कारण आज की बदली हुई समाज व्यवस्था और राजनैतिक परिस्थितियों एवं आकाक्षओं और उपलब्धियों के बीच की खाई साधारण और व्यापक कारणों में मुख्य हैं। पहले पितृ केंद्रित सम्मिलित परिवार में सब लोग अपना-अपना स्थान जानते और अपनी-अपनी स्थिति से संतुष्ट थे। वह व्यवस्था राजतंत्र के अधिक अनुकूल थी। आजकल के बढ़ते हुए दार्शनिक व्यक्तिवाद और राजनीतिक प्रजातंत्रवाद ने सामाजिक स्वतंत्रता के भावों को बढ़ावा देकर परिवारों में विघटन के तत्वों को अधिक पोषण प्रदान किया है। 'नाउओं की बारात में सब ठाकुर ही ठाकुर चिलम भरने कौन जाये की बात हो जाती है।' अकाक्षाओं और उपलब्धियों के बीच की खाई ने भी संतोष को जन्म दिया है। असंतोष की मनोदशा में सारी सामाजिक और पारिवारिक व्यवस्था असंतोषप्रद और दोषपूर्ण दिखाई देने लगती है। असंतोष एक संक्रामक रोग का रूप धारण कर लेता है।

असाधारण कारण प्रायः दो प्रकार के होते हैं। कुछ तो पक्षों की मनोवृत्ति से सम्बन्ध रखते हैं, उनको हम विषयीगत कहेंगे और कुछ उन बाह्य और आंतरिक अभावों या असमानताओं अथवा संघर्षों के कारण होते हैं, जिनकी पूर्ती, संयोजन या समीकरण के प्रयत्नों में मनमुटाव खड़ा हो जाता है। उनको हम विषयगत कहेंगे।

विषयीगत कारणों में वे मनोवैज्ञानिक कारण भी सम्मिलित हैं जो किसी प्रकार की शंका में जन्म लेते हैं। ये प्रायः योनिमूलक होते हैं। इनका परिणाम बड़ा भयंकर होता है, इनमें मानसिक विकृतियां भी उत्पन्न हो जाती हैं।

विषयीगत कारण

दूषित अहं

विषयीगत कारणों में सबसे व्यापक और मूलभूत कारण है दूषित अहं। साधारणतया अहं या अहंकार मनुष्य के स्वरूप या आपे (पर्सनेलिटी) का परिचायक होता है। अहंकार या अहंभाव जीव का व्यावर्तक गुण माना जा सकता है। ब्रह्मज्ञानी लोग भी जब 'अहं ब्रह्मास्मि' कहते हैं तब भी अहं का अस्तित्व बना रहता है। उसका नितांत लोप नहीं होता। अहंकार ही व्यक्ति-व्यक्ति में भेद करता है और प्रायः सभी सामाजिक कार्य अहं का अस्तित्व मान कर चलते हैं। वेदांती लोग भी अहं की कम से कम व्यावहारिक सत्ता मानते हैं। अहं की आवश्यकता स्वीकार करते हुए भी उसकी व्यावहारिक सीमाएं माननी पड़ेंगी। जब तक हम दूसरे के अहंभावों का अस्तित्व स्वीकार करते हुए अपना अधिकार-क्षेत्र और कार्य-क्षेत्र

सीमित रखते हैं और जब तक हम 'मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्नाः' और 'भिन्न रूचिर्हिलोकाः' के आधार पर दूसरों की राय और कार्य और कार्य-पद्धति की स्वतंत्रता और उपयुक्तता को मानते हैं। तब तक झगड़े की सम्भावना कम रहती है और जहां एकाधिकार का भाव आया वहां कलह और संघर्ष का बीजा रोपण हुआ।

व्यक्तित्व की टकराहट

'एकमेवाद्वितीयम्' का भाव ब्रह्म के लिये ही उपयुक्त है, किंतु व्यक्ति भी गुप्त या प्रकट रूप से इसकी स्पष्टीकरण करते हैं। जहां वह 'हम चुना दीगरे नेस्त' के भाव को अपनाता है, वहीं कलह का सूत्रपात हो जाता है। व्यक्तित्वों में टकराहट होने लगती है। छोटे लोग भी अपना आस्तित्व प्रकट करने के लिए अपने मतभेद या स्वतंत्र रूप से काम करने का अधिकार प्रयोग में लाते हैं। बड़े आदमियों या अहमन्य लोगों को दूसरों के जवाब देने का अधिकार भी असहाय हो जाता है। और अपनी कही हुई बात की क्षीणातिक्षीण प्रतिक्रिया को अपनी वरिष्ठता और श्रेष्ठता के अधिकार को चुनौती समझने लगते हैं और उसकी रक्षा के लिए अपनी जवान की लगाम ढीली कर देते हैं। वे आतंका का वातावरण उपस्थित करना चाहते हैं। आतंक की बात दो प्रकार के लोग सह सकते हैं, या तो वे उदारमान लोग जोकि आतंक भरे वाक्यों की अपनी आध्यात्मिक मस्ती में उपेक्षा करते हैं 'पुरुष वचन अति दुसह स्त्रवन सुनि, तिहि पावक न दहौंगे,' या वे लोग जो किसी प्रकार से दबे हुये हैं। आध्यात्मिक मस्ती में उपेक्षा करने वाले तो 'राम कृपाल कृपा तें' ही इस संसार में आते हैं और दबे हुए लोगों का भी अहं भाव कभी-न-कभी जाग जाता है। साधारण लोगों में तो अहंवाद और आतंक की प्रक्रिया हुए बिना नहीं रहती। व्यक्तियों के व्यक्तित्व की जहां टकराहट हुई, वहीं लड़ाई की चिनगारियां फूट निकलती हैं।

हीनता का भाव

जिन लोगों में कोई कुण्डाएँ या हीनताभाव नहीं होते वे लोग आतंकभरे शब्दों को सहज में सहन कर लेते हैं, किंतु जहां कोई कुण्डा या हीनताभाव होता है वहां बिना आतंक के भी सहज में ही आतंक की गंध आने लगती है और तुच्छ कारणों पर भी व्यक्तित्व की प्रबल टकराहट हो जाती है। हीनता ग्रंथि वाला अपने को श्रेष्ठ प्रमाणित करने की कौशिश करता है और उसमें अपनी बात का पक्ष दृढ़तर रूप से समर्थन करने की प्रवृत्ति आ जाती है। वह अपने पक्ष को गिरते हुए नहीं देखना चाहता है। जहां व्यक्ति को यह भान होने लगता है कि उसकी असह्य अवस्था (जैसे सगे बंधु-बंधवों को न होना, दूसरी माता का होना,) निर्धनता वा जाति में हीनता के कारण उसके साथ दुर्व्यवहार किया जाता है, वहां विद्रोह की

आग दबाए से भी नहीं दबती है। साधारण सी बात में भी द्वेष की गंध आने लगती है और कभी कभी दूसरे पक्ष का भी, जब वह यह देखता है कि अकारण उसको दोष दिया जा रहा है, रोष उमड़ पड़ता है। ऐसी अवस्थाओं में बड़ी सावधानी से काम लेना चाहिये। हीन पक्ष को यह न मालूम होने देना ही कि वह हीन पक्ष का है-श्रेयस्कर होगा। इस प्रकार के लोगों के हठवाद को भी सहृदयता की दृष्टि से देखना चाहिये। घर के नौकर भी इसी हीनता ग्रंथि वाले वर्ग में आते हैं। वे अधिकारी और कर्मचारी जो भी अपने से उच्चतर अधिकारियों द्वारा डाटे-फटकारे जाते हैं, अपनी खीज को दूसरो पर गुस्सा करके दूर करते हैं। माता-पिता द्वारा प्रताड़ित बालक एक दूसरे के काम में छिद्रान्वेषण कर अपनी हीनता को दूर कर लेते हैं।

दूषित अहं के अन्य वर्ग

अहंभाव की तृप्ति अनेक रूपों में होती है। उनमें परछिद्रान्वेषण भी एक प्रकार है। दूसरों की कमी दिखाकर लोगों को सहज में ही अपनी श्रेष्ठता का प्रमाण-पत्र मिल जाता है। देखने में तो छिद्रान्वेषण उसके सुधार या लोकहित के लिये होता है, पर इसके मूल में आत्मश्रेष्ठता प्रमाणित करने की प्रवृत्ति रहती है। ऐसे विरले संत ही होते हैं जो 'सह दुख पर छिद्र दुरावा' की उदारता रखते हैं। आज कल तो परछिद्रान्वेषण में ही अपनी बुद्धिमत्ता समझी जाती है। यदि कोई व्यक्ति किसी बात की हीनता रखता है तो वह दूसरे के दोषों का उद्घाटन कर अपनी क्षतिपूर्ति करना चाहता है। परछिद्रान्वेषण का तारतम्य उभयपक्षी होकर लड़ाई का रूप धारण कर लेता है। बाल की खाल निकालने की प्रवृत्ति कुशाग्र बुद्धि की चाहे परिचायका हो किंतु जहां वह महत्वाहीन बातों में प्रयुक्त होती है, वहां वह अत्याचार का रूप धारण कर लेती है और अत्याचार के प्रति विद्रोह जाग्रत होता है।

कुशल परन्तु अधीर लोग

'पर उपदेश कुशल' तो बहुतेरे होते ही हैं किंतु कार्यकुशल लोगों में भी कुछ ऐसे अधीर लोग होते हैं जो दूसरों को अपनी राह काम करते नहीं करते देख सकते। वे जहां जरा भी त्रुटि देखते हैं वहां बरस पड़ते हैं। उनको इतना धैर्य नहीं होता कि वे दूसरो की गलती करते और सुधरते देख सकें। वे सबको अपने मापदंड से मापना चाहते हैं और यह भूल जाते हैं कि सब लोगों की शिक्षा दीक्षा और कार्यक्षमता एक सी नहीं होती और न सब लोगों की कार्यपद्धति एक सी होती है। ऐसे कार्यकुशल लोग अपनी कुशलता से दूसरों को आंतकित करना चाहते हैं और सबको मूर्ख और अकार्यकुशल प्रमाणित करने में उन्हें रस मिलता है। वे कार्यकुशल लोग अपनी कार्यकुशलता की दुन्दुभि बजा कर ऐसा वातावरण उपस्थित कर देना

चाहते हैं मानों जमीन और आसमान उनके ही बुद्धिबल पर डटे हुये हैं। वे दूसरों को अपनी योग्यता से आंतकित कर हतप्रभ बना देते हैं। दूसरे अपनी रही सही बुद्धि खो बैठते हैं और गलतियों का तारतम्य बंध जाता है। प्रत्येक गलती डांट फटकार का कारण बन जाती है और उसकी क्रिया प्रतिक्रिया से वातावरण अंशात हो जाता है। कभी-कभी उनके परस्पर विरोधी आदेश होते हैं और इतर लोग किकर्तव्यविमुद रह जाते हैं वे अपनी कार्यकुशलता में यह भूल जाते हैं कि वे अपनी जल्दबाजी और उल्ट फेर की नीति से कितना क्षुब्ध वातावरण पैदा कर देते हैं और उससे दूसरों के कार्यकुशल पर अंवाछित प्रभाव पड़ता है।

रूढिवादी लोग

इनसे मिलते जुलते लोग रूढिवादी लोग हैं जो एक कार्य का एक ही मार्ग स्वीकार करते हैं वह मार्ग प्रायः अपना ही होता है। उनका अहम् समुदाय के अहम का बल पाने लगता है। ऐसे लोग रूढि से रेखा मात्र भी विचलन सहन नहीं कर सकते। वे बात-बात में अविश्वास, नवीन शिक्षा और कलियुग के कुप्रभाव एवं गर्हित बुद्धिवाद की गन्ध पाते हैं और धर्म खतरे में है कि दुहाई देने लगते हैं। वे रूचि वैचित्र्य को एक सीमा तक ही स्थान देते हैं। रूढि में संगठन की भावना अवश्य ही रहती है। किन्तु नवीन स्फूर्ति का द्वार बंद हो जाता है। वे नवीन अनुसंधानों के भी विरोधी बन जाते हैं। अनुसंधानों की अपरिपक्वता में परिपक्वता लाना आवश्यक है। किन्तु अपरिपक्वताके कारण अनुसंधान कार्य बिलकूल बंद कर देना मर्ज और मरीज दोनों को नष्ट कर देना है। ऐसे ही धर्म धुरंधर लकीर के फकीर कट्टरपंथी दूसरों की त्रुटियों के लिए असहिष्णु होते हैं। वे सब को एक लाठी से हांकना चाहते हैं। जिससे उनके सिद्धांतवाद से कदम मिलाकर चलना साधारण लोगों को असंभव हो जाता है और घर के लोग उनसे विद्रोह करने लग जाते हैं।

मुखर और वाचाल

कुछ लोग स्वभाव से मुखर और वाचाल होते हैं। कार्यकुशल, रूढिवादी और सिद्धान्ती लोगों में ऐसे लोगों की संख्या कुछ अधिक होती है, उनकी फालतू उमंग और शक्ति को जीह्वा के व्यायाम में निकास मिलता है। वे प्रायः आरोही स्वरों में ही बोलते हैं, उनकी बात में अंहकार प्रेरित आंतकवाद की ध्वनि सुनाई पड़ती है। उनके सहज वार्तालाप में कटुता छलछलाती हुई दिखाई देती है। वे सहज में लड़ाई मोल ले लेते हैं। और आ बैल मुझे मार की नीति में विश्वास करते हैं। वे तुलसीदास जी की भांति 'मूरख हृदय न चेत' कह संतोष नहीं कर लेते वरन् जड़मति को सूजान बनाने का ठेका सा ले लेते हैं। जड़मति भी अपना व्यक्तित्व और अहम् रखते हैं और फिर व्यक्तित्व में टकराहट होने लगती है। उपदेश और सुधार की प्रवृत्ति अच्छी

है किन्तु वह शांति और प्रेम के साथ होनी चाहिए।

स्वार्थी लोग

कुछ लोगों का अहम् उनके संकुचित स्वार्थों में प्रकट होने लगता है। वे अपनी आत्मा को उतना उदार नहीं बना सकते कि वे दूसरों के स्वार्थ को भी देखें। अपने स्वार्थ को महत्ता देने के लिए वह सहज में संघर्ष की स्थिति पैदा कर देते हैं। उनका स्वार्थ उनको अंधा बना देता है और उस दशा में वे मूल्यों में विवेक नहीं कर सकते। वे आवश्यकताओं के महत्व पर ध्यान नहीं देते। उनको अपनी तुच्छ आवश्यकता भी बड़ी से बड़ी दिखाई देने लगती है और उसकी पूर्ति न होने पर उनको असंतोष होने लगता है। वे उस असंतोष को उग्र शब्दों में मुखरित करने लगते हैं। दूसरों की बड़ी से बड़ी आवश्यकता पर वे ध्यान नहीं देते। वे यद्यपि दूसरों पर इस दोष का आरोपण करते हुये थकते कि 'अपना काम सिद्ध और दूसरों का चौपट' तथापि स्वयं इसके सबसे बड़े अपराधी होते हैं। स्वार्थों की टकराहट लड़ाई की जननी बन जाती है।

विषयगत कारण

यद्यपि लड़ाई झगड़ों के लिए व्यक्तियों की मनोवृत्ति उत्तरदायी होती है, तथापि व्यक्ति से बाहर भी कुछ कारण होते हैं जिनसे संघर्ष उत्पन्न होता है। पुराने जमाने में युद्धों के तीन कारण बताए जाते थे 'जर (धन), जमीन और न (स्त्री)।' आजकल घरेलू लड़ाईयों में भी आर्थिक कारण अपना महत्व रखते हैं। आर्थिक कारणों में पैतृक संपत्ति के वितरण में असमानता है और भौतिक सुख सुविधाओं की असमानताएं होती हैं। भारत में विशेषकर हिन्दूओं में सम्मिलित कुटुंब की प्रथा है। वह किसी अंश में एक वरदान है और किसी अंश में अभिशाप। यद्यपि हिन्दू परिवारों में थोड़ी बहुत मात्रा में असमानताएं सहज स्वाभाविक रूप में स्वीकार की जाती हैं— बेचारी गृहलक्ष्मियाँ अपनी निम्न स्थिति को उदार सेवार्थ के रूप में अपनाती हैं और घर के अन्य लोग भी अपने स्थान के अनुकूल सुख सुविधाओं को ग्रहण करते हैं तथापि एक ही घर के भीतर आर्थिक और भौतिक विषमताएं घटकती हैं और प्रायः वे संघर्ष का कारण बन जाती हैं। ये विषमताएं अमीर और गरीब दोनों घरों में होती हैं, किन्तु गरीब घरों में परिस्थितिवश वे कुछ अधिक विषम हो जाती हैं। स्वार्थी लोगों में यह संघर्ष प्रायः उग्र रूप धारण कर लेता है। घर के भीतर अधिकारों की कमी बेशी भी आर्थिक कारणों में आती है।

आदर्शों का संघर्ष

यह भौतिक तो नहीं है किन्तु इसको हम बाह्य कारण ही मानेंगे। आदर्शों

और विचारों का संघर्ष प्रायः सभी विचारशील मनुष्यों में होता है। कहीं उग्र रूप से और कहीं सौम्य रूप से। इस विचार और आदर्शों के भेद से कार्य पद्धति और जीवनस्तर में भी भेद आ जाता है। विचारों में भेद विभिन्न क्षेत्रों में हो सकता है। राजनीतिक विचारों में जैसे कांग्रेसी और साम्यवादी दल के लोगों में, और धार्मिक में जैसे आर्य समाजी सनातन धर्मी विचारों में। कार्य पद्धतियों में भेद भी कभी-कभी झगड़े का कारण बन जाता है। घर से बाहर के लोगों के प्रति सामाजिक न्याय के संबंध में घर के लोगों में मतभेद हो सकता है। यह संघर्ष कुछ उच्चस्तरीय होता है किन्तु इसमें भी कभी-कभी लोग नीच-स्तर पर उतर आते हैं।

भाव क्षेत्र के संघर्ष

ये अधिक भीतरी और तीव्र होते हैं। ये प्रायः किसी न किसी प्रकार के वास्तविक कल्पित विश्वासघात से सम्बन्ध रखते हैं। इनमें कुछ योनी मूलक भी होते हैं। ये प्रायः पति पत्नी के सम्बन्ध में होते हैं। जहां लोगों में अहम की भावना प्रबलता होती है, वहां प्रेम के सम्बन्ध में अहम् के समर्पण की भी प्रवृत्ति रहती है। वह अहम् का समर्पण अपना प्रतिदान चाहता है। जब वह प्रतिदिन नहीं मिलता, जब वह अभीप्सति चिंता भाव दूसरे पक्ष में नहीं पाया जाता तब अंसतोष होता है। पिता पुत्र, छोटे भाई, बड़े भाई के सम्बन्धों में भी यही बात होती है। माता पिता के लाड दुलार का असमान वितरण भी कभी-कभी ईर्ष्या का कारण बन जाता है। स्त्री को आश्रितता तथा भाव में सुख मिलता है, उसे यदि अपने पति में वह आश्रयभाव न मिले तो संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। वह आश्रयभाव किसी दूसरे आकर्षण के कारण हो और चाहे समयाभाव के कारण, फल संतोष ही होता है। कभी-कभी ये कारण एक दूसरे से मिलकर एक संकुलता उत्पन्न कर देते हैं। सास बहु की लड़ाई किसी अंश में आर्थिक उदारों के और किसी अंश में प्रेम सम्बन्धी अधिकारों के संघर्ष से जन्म लेती है।

प्राचीन पारिवारिक व्यवस्था में दंपति के सम्बन्ध सूत्र दृढ और स्वाभाविक थे। इनके दृढ बनाने में धर्म भी बहुत कुछ सहायक होता था। अब नई सभ्यता के संपर्क और धार्मिक भावना के ह्रास के विघटन के तत्व बढते जाते हैं। पहले परिवार एक महत्वपूर्ण ईकाई होता था। भोजन, मनोरंजन और स्वास्थ्य चिंता एवं सेवा-सुश्रुषा सब परिवार के भीतर ही हो जाते थे। अब मनोरंजन के लिए क्लब और नाचघर हैं। आजकल सिनेमा भी बहुत सा समय ले लेते हैं। मनोरंजनों में वह स्नेहहार्दता नहीं है जो पहले थी। अब मनोरंजन धनार्जित हो गये हैं। रोगों की चर्या अस्पतालों में होती या परिचर्या गृहों में। भोजनों में भी वह वैयक्तिक संपर्क नहीं रहा जो पहले था। भार्या के लिए कहा गया था 'भोजनेषुमाता' अब भोजनों की

वैयक्तिक मधुरिमा को होटलों ने छीन लिया है। पत्नी का गृहलक्ष्मी का गौरवपूर्ण स्थान जाता रहा है।

पति पत्नी के सम्बन्धों में बाधा डालने वाले कारण और भी होते हैं। पहले स्त्रीयां अपने पतियों के ऊपर आर्थिक रूप से निर्भर रहती थी। उस निर्भरता में एक विवशता होते हुये भी मधुरिमा थी। आज के युग में वह निर्भरता नहीं है। बहुत से शिक्षित पत्नियां अपनी रोजी आप कमाती हैं। रोजी के साथ उनकी दुनिया भी अलग हो जाती है। पारिवारिक घरे के अतिरिक्त आजीविका क्षेत्र के नये उत्तरदायित्व आ जाते हैं और उनमें संघर्ष होना आरंभ हो जाता है। पति पत्नी का हिसाब किताब भी अलग रहने लगता है। हम स्त्री के समान अधिकार के पक्षपाती हैं, किन्तु समान अधिकार के साथ स्वेच्छापूर्ण आत्म समर्पण की भी भावना बढनी चाहिए।

पति की अति व्यवस्तता भी पारिवारिक सम्बन्धों में बाधा होती है। बहुत से कलाकार पत्नी की अपेक्षा अपनी कला से अधिक प्रेम करते हैं। राजनीतिक नेता बीवी बच्चों की घरेलू आवश्यकताओं को भूल जाते हैं। वे अपने दांव पेंचों में मस्त रहते हैं। पति को भी पारिवारिकता और सामाजिकता में संतुलन करना पड़ेगा। पति पत्नी की शिक्षा और सांस्कृतिक तथा परिवारों के जीवन स्तर में अंतर होना पति पत्नी में अनबन का कारण हो जाता है। मुंशी प्रेम चद्र की 'बड़े घर की बेटी' में जो भावज देवर संघर्ष हुआ है वह अधिकांश में नायिका के मातृगृह के और पतिगृह के जीवन स्तर में अंतर के कारण ही हुआ।

विषयगत शमनोपाय

आर्थिक

मनोविज्ञान वेताओं ने युद्धों और लड़ाई झगड़े के मूल में युयुत्सा (पेग्नेसिटी) और आत्मस्थापना (सेल्फ एसर्शन)की सहज वृत्तियां मानी थी। इनके मान लेने पर युद्ध और लड़ाई झगड़े मनुष्य के लिए स्वभावज हो जाते हैं और शमनोपाय विफल ठहरते हैं, किन्तु आजकल सहज वृत्तियों के संबंध में लोगों का विचार बदल गया है। वे अब निसर्ग सिद्ध (इन्नेट) नहीं मानी जातीं। वे परिस्थितियों और वातावरण से उत्पन्न अर्जित मानी जाती हैं। इस दृष्टि से लड़ाई झगड़ों के शमनोपाय संभव हो सकते हैं।

पहले हम ब्राह्मणतम कारणों को ही लेंगे। राम और भरत की जैसी भापय भक्ति वाले उच्च आदर्शों के देश में आर्थिक कारणों पर झगड़े होना कुछ आश्चर्यजनक - सा लगता है। किन्तु वास्तव में ये होते हैं, इनके आस्तित्व से इनकार नहीं किया जा सकता और दीवानी की अदालत और वकील इन्हीं झगड़ों से अपना जीवन यापन करते हैं। इनके शमन के उदर दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है। हम चाहे आजकल की विषम परिस्थितियों के अनुकूल सम्मिलित कुटुम्बों में न रहें, किन्तु

सम्मिलित कुटुम्बो के पीछे काम करने वाली 'घी कहाँ गया ? खीचड़ी में' लोकोक्ति की भावना को अपनाना होगा। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के आदर्श वाले देश में हमको अपना आदर्श 'भार्येव कुटुम्बकम्' न बना लेना चाहिए।

हम लोग संसार को मिथ्या मानते हुए भी उसके लिए प्राण देने को तैयार हो जाते हैं। इसके लिए हमको मूल्यों में परिवर्तन करना पड़ेगा। धन की अपेक्षा जन को अधिक महत्ता देनी होगी-

मैं आर्यों का आदर्श बताने आया,
जन सम्मुख धन को तुच्छ बताने आया।

सारा साहित्य मानव हिताय लिखा गया है- ('हितेन सह सहितं साहित्यस्य भावः साहित्यम्') किंतु इन उच्च आदर्शों को हमें व्यवहार में चरितार्थ करना होगा। इसके लिए यथा- संभव सुख सुविधाओंका समान वितरण आवश्यक है। विशेष अवस्था और विशेष स्थिति के लोगों, जैसे वृद्ध, अशक्त, रोग, बच्चे आदि की दूसरी बात है किंतु साधारण तन्दुरुस्ती के लोगों के लिए खाने पीने की सुविधाएं एक सी होनी चाहिएं। यह बात आदर्श रूप से संभव है, किंतु आदर्श और यथार्थ को खाई को कम करने लिए सदा प्रयत्नशील रहना हमारी सदाशयता का परिचायक होगा। हमारे यहां स्त्रियां अपने उदार आत्मत्याग के कारण अपने लिए स्वेच्छा से सुविधाओं की न्यूनतम स्वीकार कर लेती हैं किंतु पुरुषों को इसका लाभ नहीं चाहिए काम करने वाले लोगों को गृहस्थी के कार्य-भार में भी हाथ बटाना वाछनीय होगा। यह नहीं कि पुरुष आराम करें और स्त्रियां चक्की में पिसें। छोटे भाई और बड़े भाई में जहां अधिकार की समानता हो वहां कर्तव्यों की भी समानता हो। कोई अपने कर्तव्य से पीछे ने हटे और किसी को उसे याद दिलाने की आवश्यकता न पड़े।

धन के सम्बन्ध में भी हमें अपने विचार बदलने होंगे। धन को साध्य रूप में नहीं, वरन् साधन रूप में ही स्वीकार किया जाए। हमारा यह कहना नहीं कि अर्थ के प्रति वैराग्य वृत्ति धारण कर लें-

अर्थमनर्थ भावय नित्यं, नास्ति ततः सुखलेशः सत्यम्।

पुत्रादपि धनभाजां भीतिः सर्वत्रैषा कथिता नीतिः ॥

यह कथन वैरागियों के लिए है। धन को हम हेय न समझें अर्थ को चार पुरुषार्थों में माना गया और धर्म ग्रन्थों में धर्म, अर्थ और काम तीनों के संतुलन का आदेश दिया गया है। सफल मनुष्य को अपने समय का विभाजन कर तीनों का अविरोध भाव से सेवन करना चाहिए-

क्वच्चिदर्थं च कामं च धर्मं च जयताम् वर।

विभज्य काले कालज्ञः सर्वान् वरद् सेवसे ॥

जो अर्थ धर्म और काम का बाधक नहीं होता वह झगड़े की जड़ नहीं बनता जहां पर धन के साथ 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा त्याग के साथ भोग का पालन नहीं किया जाता। वहीं अनर्थ का साधक होता है। आर्थिक मूल्यों में भी सब मूल्य बराबर के नहीं होते। तुच्छ हानियों के कारण सिर फुटौअल न करें। आर्थिक मूल्यों में कोई ऐसा मूल्य नहीं जो निजी सम्बन्धों को मधुरिमा और श्रेष्ठता की समता रखता हो। सारांश यह है कि हम धन धान्य से समृद्ध होने के लिए प्रयत्नशील रहें। 'अजरामरवत प्राज्ञोविद्यामर्थञ्च चिन्तयेत्।' यदि हम यथा लाभ संतोष की वृत्ति को नहीं अपना सकते हैं तो धन के अभाव में संघर्ष और भी बढ़ जाता है किन्तु जो धन कमाया जाये वह समयक साधनों से हम अंत में साकेत संत के लेखक के साथ यह कहेंगे -

रहे भौतिक सुख सबके पास।

किन्तु जन बनें न उसके दास ॥

आदर्शों का संघर्ष

यह तुच्छ स्वार्थों का संघर्ष नहीं है, किन्तु कभी-कभी उच्च साध्यों की पूर्ति के लिए नीचे साधन अपनाए जाते हैं- महात्मा गांधी की एक बड़ी देन यह थी कि उन्होंने साध्य की शुद्धता के साथ साधनों की भी शुद्धता का उपदेश दिया था। वह किसी प्रकार का दबाव डालने या कटुता उत्पन्न करने के पक्ष में न थे। वह स्वयं कष्ट सह कर हृदय परिवर्तन चाहते थे। आदर्शों और विचारधारा के लिये लड़ना ठीक है किन्तु उसमें कटुता न आनी चाहिए। आदर्श मनुष्य से बड़े नहीं। यदि आदर्शों के पालन करवाने में मनुष्य ने अपनी मनुष्यता खो दी तो उसकी जीत हार में बदल जाती है। जहां आदर्शों की टकराहट हो, समझौते और समन्वय की नीति वर्तना वांछनीय है हम दूसरे दृष्टिकोण को समझें, उसमें जो सार हो उसे सहर्ष अपनाएं और अपना सहयोग प्रदान करें, तभी जीवन संघर्ष कम हो सकता। हम परिवार के स्वाभाविक बंधनों का सदा ध्यान रखें। मानवता के मूल्यों को सबसे ऊंचा समझें। निजी सम्बन्धों को बनाए रखने के लिए अपनी हार भी स्वीकार कर लेना श्रेयस्कर है:

जो परि पांय मनाइए तासों रूठी विचार।

तुलसी तहां न जीतिए, जहां जीतहु हार ॥

भाव सम्बन्धी

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि भाव सम्बन्धी झगड़े बड़े गहरे और पत्थर की लकीर की तरह प्रायः अमिट होते हैं। ये वे नहीं जिनका भौतिक दान से शमन हो जाये। सच्चे प्रेम सम्बन्ध में भौतिक चीजों का बहुत कम मूल्य होता है। यदि

होता भी है तो प्रेम के प्रतिक या उसकी अभिव्यक्ति के रूप में होता है। प्रेम के मूल्य वस्तु आश्रित नहीं, व्यक्ति आश्रित होता है। प्रेम में आत्मदान रहता है। आत्मदान का बदला आत्मदान में ही चाह जाता है। आश्रय की भूख में व्यक्तित्व का प्रश्न आ जाता है। इसमें व्यक्तिगत और एकांतिक ध्यान आपेक्षित है। एकांतिक ध्यान केवल भावात्मक क्षेत्र में आपेक्षित होता है। वैसे तो मनुष्य के कार्य और भाव के अनेक क्षेत्र होते हैं किन्तु पति पत्नी का भाव क्षेत्र विशेष रूप का होता है। वे प्रेम के क्षेत्र में एक निष्ठता चाहते हैं। प्रेम का एकाधिकार जहां तक हो अक्षुण्ण रखा जाए। उसमें यदि थोड़ा बहुत व्यतिक्रमण हो तो उदंडता के साथ नहीं, वरन् विनम्रता और विवशता से। आश्रित की आश्रित भावना में ठेस न लगनी चाहिए। थोड़ा बहुत आर्थिक नुकसान सहकर आश्रित को आश्रित होने का सुख देना चाहिए। एक ओर चिन्ता का भार अपने ऊपर ले लेने से दूसरी ओर विश्रब्धता की एक सुखद मधुरिमा आ जाती है। प्रेम पात्र को इतना विश्वास कि कोई मेरी चिन्ता करने वाला है, सबकुछ है। यह चिन्ता का भाव वात्सल्य और श्रृंगार की मृदुलता और मधुरिमा को दश गुना बढ़ा देता है।

पित-पुत्र और मित्र-मित्र के सम्बन्ध में भी ऐसी ही बात है। माता पिता की भावनाओं का यथा संभव आदर करना चाहिए। उसमें ठेस न लगनी चाहिए। यदि बच्चों की ओर से व्यवहार में विनम्रता रहे तो आदर्शों की टकराहट भी कम अखरती है। माता-पिता मेवा नहीं सेवा चाहते हैं।

निजी सम्बन्धों में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनमें अधिकारों की मांग का सवाल न आना चाहिए, वरन् दूसरी ओर से अधिकारों का समर्पण होना आवश्यक है। निजी सम्बन्ध में यह कहने की जरूरत नहीं है कि आपने कब चाहा था अथवा कब कहा था? निजी सम्बन्ध में क्या चाहा जायेगा- इसके अनुमान का उत्तरदायित्व दूसरे पक्ष पर रहता है। यद्यपि मांगने में संकोच किसी तरफ से न होना चाहिए, तथापि बिना मांगे ही सब इच्छाओं की पूर्ति हो जाने में निजी सम्बन्धों की रक्षा और पुष्टि होती है। दूसरे को दीन होने या हाथ पसारने की आवश्यकता न पड़े।

मनोरंजनों के सम्बन्ध में भी बड़ी सर्तकता आवश्यक है। कभी-कभी पति पत्नी के अलग-अलग मनोरंजन मनोमालिन्य के कारण बन जाते हैं। मनोरंजन के विषय में पति पत्नी को यथा संभव एक ईकाई बने रहना चाहिए। वे पति या पत्नी के न होकर दंपति के होने चाहिए। शंकाओं का निराकरण करना या उनकी संभावना को न्यूनातिन्यून कर देना ही वांछनीय है। इस सम्बन्ध में पहले से सर्तक रहना आवश्यक है। शंका यदि एक बार जड़ जमा लेती है, तो उसका उन्मूलन कठिन होता जाता है।

मूल्यों की दृष्टि से भाव के मूल्य आदर्शों से भी ऊंचे होते हैं। अधिक से अधिक आर्थिक हानि करके भी यथासंभव भाव सम्बन्धी टकराहट को बचाना चाहिए। किसी का भी जी दुखाना सबसे बड़ी हिंसा है। भावों को आघात पहुंचाना उसी हालत में क्षमय समझा जाएगा जब वह स्वार्थ के लिए न होकर आधारित व्यक्ति के लाभ के लिये या लोक हिताय हो। सुलह सफाई के हर संभव उपाय काम में लाना वांछनीय है। अहम या दूषित आत्म गौरव शांति के प्रयत्नों में बाधक नहीं होने चाहिए। निजी सम्बन्धों में अहम का बलिदान ही सबसे बड़ी विजय है।

विषयीगत शमनोपाय

विषयीगत कारणों में विषयीगत कारणों का भी बहुत कुछ संकेत हो चुका है। उनमें मूल कारण है व्यक्ति की अहमन्यता। यदि व्यक्ति अपनी सीमाओं को जान ले तो उसकी प्रभुत्व कामना, अधिकार-कामना, अधिकार भावना या घर के बड़ों का छोटों पर अधिकार जमाना है। यदि कोई छोटा भी हो तो वह बुद्धि में अपनी प्रखरता दिखाना चाहता है। अपना-अपना घोड़ा सभी आगे बढ़ा ले जाना चाहते हैं। कोई पीछे नहीं रहना चाहता। यदि हम पीछे रह जाने में संतोष करना सीखें, तो बहुत कुछ झगड़े मिट जाएं। हम दूसरों में छिद्रान्वेषण भी इसी प्रकृति वश करते हैं। हम अपने व्यक्तित्व के साथ दूसरों के भी व्यक्तित्व के आस्तित्व को स्वीकार करें। हमको कभी न भूलना चाहिए कि हमारे समान दूसरे भी व्यक्ति हैं और उनका भी व्यक्तित्व है। जिसको ठेस लग सकती है। दूसरे के व्यक्तित्व की रक्षा के लिये अपने व्यक्तित्व को संकुचित करना पड़ेगा। हीतना ग्रंथि वाले लोगों में यह ठेस जल्दी और गहरी लगती है। हमको ऐसे लोगों के साथ सावधानी से बर्तना चाहिए। जहां तक हो उसमें हीनता भाव उत्पन्न न होने दे और यदि इसी प्रकार जागृत हो जाये तो स्नेह से दुलार से या आदर सत्कार से दूर कर दें। बालाकों को और नौकरों में यदि स्वाभिमान जागता है तो उसे दबाने की अपेक्षा उसका स्वागत करना चाहिए। बालकों को बराबर डांटते फटकारते रहने से उनमें या तो भय की वृत्ति जड़ पकड़ जाती है या उनके असंतोष के दमित हो जाने के कारण उसमें बड़बड़ाने की आदत पड़ जाती है। बालक या नौकर जवाब देता है तो अधिकांश में उसके लिये अपना ही व्यवहार उत्तरदायी निकलेगा। जो लोग बालक के सुधार के प्रयत्नों में उसे चिड़चिड़ा बना देते हैं वे बालक का जीवन बिगाड़ देते हैं।

दृष्टिकोण की उदारता

दूसरों के दोषों के प्रति उदार दृष्टिकोण रखना चाहिए? बुरे लोगों में बुराईकी उपेक्षा तो करना ठीक न होगा किंतु प्रेम-पूर्वक उनका दोष बता देना वांछनीय होगा। सदा यह ध्यान रखना श्रेयस्कर होगा- 'पाप से घृणा करो, पापी से प्रेम करो।' हमें

सचेत रहते हुए भी शकांशील होने की आवश्यकता नहीं। शकां पारस्परिक अविश्वास उत्पन्न करती है और फिर सहयोग और समझौते की भावना असंभव हो जाती है। हमको दूसरों की बुराई सुनने और देखने के लिए महाराज पृथु और देवराज इंद्र की भांति सहस्रकर्ण और सहस्र-नेत्र वाला न हो जाना चाहिए। जहां तक हो पराये दोषों की वैसी ही व्यवस्था करनी चाहिए जैसे कि अपने और अपने लोगों के दोषों की। जब तक पूरा प्रमाण न मिल जाए तब तक किसी पर बुरी नीयत का आरोप न करना चाहिए। यथासंभव सबको उदारशय समझना चाहिए और सबके उद्देश्यों की उच्चता और उदारता में विश्वास रखना श्रेयस्कर होगा। जहां तक हो हम मनुष्य की आंतरिक भावनाओं को देखें और उसके व्यवहार की ऊपरी भूल चूक पर इतना ध्यान न दें।

मनुष्य का कोई एक काम उसके चरित्र का निर्णायक नहीं होता, उसके चरित्र पर निर्णय देने के पूर्व हमें उसके समस्त चरित्र और कार्यकलाप पर दृष्टि डालनी चाहिए। हम उसके कृष्ण पक्ष के साथ शुक्ल पक्ष को देखें। किसी के केवल दोष ही देखना उसके साथ अन्याय है। चाहिए तो यह कि दोषों की अपेक्षा गुणों की ओर ध्यान अधिक दें। **‘विगत मान, सम शीतल मन, पर गुण नहीं दोष कहेंगे।’** उदार दृष्टिकोण वाले दूसरे के किए हुए अपकार को पानी की लकीर सा अत्यल्प कालीन स्थायित्व देते हैं और उपकार को अपने मन में पत्थर की लकीर का सा स्थायित्व देते हैं। पानी की लकीर, बालू की लकीर (**जो थोड़े ही प्रयत्न से मिट जाती है**) और पत्थर की लकीर के समान दुर्जन और सज्जन अपने प्रेम और बैर को बनाते हैं। दुर्जनों का प्रेम क्षणिक और बैर स्थायी होता है, इसके विपरित क्रम में सज्जनों का बैर क्षणिक और प्रेम स्थायी होता है-

उत्तम मध्यम नीच गति, पाहन सिकता -पानी।

प्रीति परिच्छा तिहुन की, बैर वितक्रम जानि ॥

भाषा संयत और मधुर

घरेलू लड़ाई झगड़ों में बहुत कुछ उत्तरदायित्व भाषा का भी है। असंयत भाषा जो किन्हीं मनुष्यों का स्वभावग दोष हो जाता है, सहज ही में अवांछनीय प्रतिक्रिया उत्पन्न कर देती है। बहुत-से लोग जरा-सी देरी को न बरदाशत कर सहज में ही वह कह बैठेंगे- **‘खड़ा-खड़ा क्या मुंह देखता है, जरा से काम में घंटों लगा दिये।’** कभी-कभी एक-एक जरा-सा शब्द बोलनेवाले की तुनक मिजाजी का परिचय देता है। **‘अभी कर रहा हूं’** के स्थान में **‘करे तो देता हूं’** कह देना भीतर दबे हुये रोष का परिचायक होता है। इस तरह के वाक्य का आशय यह हो जाता है कि करे तो देता हूं, आप जल्दी क्यों मचाते हैं? स्वभाव बदलना सहज नहीं, किंतु प्रयत्न करने पर कोई बात

असाध्य नहीं। जहां तक हो मितभाषी बनना चाहिए। इतने मितभाषी भी नहीं कि उपेक्षा प्रकट हो और इतने प्रगल्भ ओर वाचाल भी नहीं कि लोग सदाशयता में संदेह करने लगे। मधुर भाषण के पीछे माधुर्यपूर्ण मन का होना आवश्यक है। यह माधुर्य अहंभाव के त्याग से ही संभव हो सकता है—

ऐसी वानी बोलिये, मन का आपा खोय।

औरन को सीतल करै, आपै सीतल होय ॥

अपनी त्रुटियों को भी देखें

दूसरों के दोष-दर्शन में मान दण्ड की समानता रखना अत्यंत आवश्यक है। अपने अथवा अपने मित्रजनों के मेरू समान दोष राई समान और दूसरों के राई समान दोषों को मेरू समान दोषों को मेरू समान समझना अन्याय है। अपने बड़े पापों को छोटा समझने की दूषित प्रवृत्ति की बड़े मार्मिक शब्दों में गोस्वामीजी ने आत्म स्वीकृति की है—

जानत हौ निज पाप-जलधि जिय जल सीकर सम सुनत लरौं।

राजसम पर अवगुन सुमेरू करि गुन गिरि सम रजतें निदरौं ॥

दूसरों को दोषी ठहराने से पूर्व हम यह देखें कि हम इन कमजोरियों से कहाँ तक युक्त हैं। दूसरों के लिए न्याय की तुला हाथ में लेने से पूर्व हम स्वयं अपनी योग्यता पर विचार करें और यदि हम में भी वही दोष हैं तो दूसरे के दोष को भी उसी दृष्टि से देखें जिसमें अपने को। पर उपदेश कुशल बनना ठीक नहीं। बहुत से स्थानों में दूसरे के दोष में हम स्वयं भागीदार होते हैं। दूसरों के बहुत से दोष हमारी ही असावधानी या अदूरदर्शिता के कारण सृजित होते हैं। यह देख लेना चाहिए कि अमुक दोष के अस्तित्व में आने के हम कहाँ तक उत्तरदायी हैं। यदि नौकर ठीक काम नहीं करता है तो हमें देखना चाहिए कि हमारी और से उसके वेतन तथा उसकी सुख सुविधाओं में कमी तो नहीं है। उसके कहने से पूर्व ही उसके उचित वेतन और सुख-सुविधाओं का ध्यान कर लेना मानवता है। यह माना कि नौकर लोग प्रायः खराब होते हैं, लेकिन उनकी शिक्षा इतनी ऊँची नहीं होती कि उनसे उच्चता की आशा की जाये।

घर में शांति रखने का सारा उत्तरदायित्व बड़ों का ही नहीं है, छोटों का भी है। जहां बड़ों का यह धर्म है कि कम से कम निर्देशन का साथ छोटों का स्वतंत्र व्यक्तित्व विकसित होते देखें, और उनकी न्यायोचित अभिलाषाओं में बाधक न बनें, वहां छोटों का भी पुनीत कर्तव्य है कि वे अपने गुरुजनों द्वारा प्रदत्त स्वतंत्रता का दुरुपयोग न करें और उनके निर्देशन को सहर्ष स्वीकार कर उसके अनुकूल कार्य करें। वे मिनमिनाने और बुदबुदाने की आदत छोड़ें। विद्या की भंति सेवा में भी

मधुरता तभी आती है, जब वह विनय समन्वित हो।

लचीला और अनुकूलनशील स्वभाव

स्वभाव की दृढ़ता एक गुणा मानी गयी है, किंतु जब आग्रह और हठ की वस्तु कोई बड़े सैद्धांतिक महत्व की हो। आर्थिक या आदर्श संबंधी हानियों में मूल्यों का प्रश्न रहता है सत्यग्रह जब जरा-जरा-सी महत्वहीन बातों पर होता है, तब वह खिलवाड़ का रूप धारण कर लेता है। यद्यपि महत्व के निर्णय का कोई निरपेक्ष मानदंड नहीं है, तथापि मोटे तौर पर सब लोग इस अंतर को जानते हैं। धर्म में भी सापेक्षता होती है। किसी को मार डालना और कपड़ा पहन कर खाना खा लेना, बराबर के पाप नहीं हैं। जो लोग बात का महत्व न देखकर केवल इसलिए लड़ते हैं कि उनकी कही हुई है वे दूषित अहं वाले लोगों की कोटि में आ जाता है। लचीला और अनुकूलनशील स्वभाव मनुष्य की स्वस्थ और साधारण मनोदशा का परिचायक होता है। अनुकूलनशील मनुष्य ही लोकप्रिय और सफल बन सकते हैं। अनुकूलनशीलता का यह अभिप्राय नहीं कि बुरों की बुराई में शामिल हो जाये। अनुकूलनशीलता की भी सीमाएं हैं। न तो बिलकुल मोम-से बन जाना चाहिए और न लोह चौखटे का रूप धारण कर लेना चाहिए जो झुकाये न झुके। किंतु इसके साथ ही यह सिद्धांत दृष्टिगोचर रखना होगा कि अपने स्वार्थ या आलस्यवश स्वभाव को लचीला बनाना या सिद्धांतों में ढील डालना एक महान् दोष है। सैद्धांतिक शैथिल्य तभी समझा जायेगा जब वह किसी दूसरे को अपमान से बचाने को हो अथवा साम्य और शांति के लिए हो।

यह समझ लेना चाहिए कि संसार द्रुत गति से बढ़ा रहा है। उसके प्रति सब लोग एक-सी संवेदनशीलता नहीं रखते। बच्चे जल्दी प्रभावित होते हैं। बड़े-बड़े लोग उन प्रभावों को संयत रखने में योग देते हैं, किंतु बड़े-बुढ़े को भी इतना अगतिशील न बन जाना चाहिए कि उनके साथ रहना भी कठिन हो जाये। प्राचीन समय के और अब के दंडविधान में परिवर्तन हो गये हैं। उनको तो स्वीकार करना पड़ेगा ही। रेल, नल, घी की तेजी आदि से जो खान-पान के नियमों में परिवर्तन हुआ, वह आखों से ओझल नहीं किया जा सकता। 'जैसी चले बयार, पीठि तब तैसी दीजै' में बहुत-कुछ सत्य है, किंतु मनुष्य को बिलकुल बेपेंदी का लोटा भी नहीं होना चाहिए। मनुष्य को न तो इतना कड़ा होना चाहिए कि वह समय की गति में बाधक हो और न इतना गतिशील हो कि जीवन में कुछ स्थयित्व ही न हो।

पूर्व-ग्रहों का त्याग और प्रेम का विस्तार

लोग बुद्धिमान होते हुए भी कुछ बातों के लिए अपनी बुद्धि से काम नहीं लेते हैं। वे अपने पूर्व निर्णयों पर कुतुबनुमा की सुई की भांति दृढ़ रहते हैं। यदि एक

आदमी बुरा है तो वह सौ सफाई देने पर भी बुरा ही बना रहेगा। वे लोग किसी का सुधारने का अवसर नहीं देना चाहते। चरित्र के पतन में तो वे विश्वास करते हैं, उत्थान में नहीं। उनमें घृणा के तत्व अधिक प्रबल होते हैं। उनकी घृणा व्यक्तियों के प्रति भी होती है और वर्गों के प्रति भी। 'नराणं नापितो धूर्तः, क्वचित् कारण भवेत् साधुः, क्वचित् रूपवती सती,' जिसका बनिया यार उसको दुश्मन क्या दरकार इत्यादि- ऐसी एकांगी लोकोक्तियों पर उनके निर्णय आधारित रहते हैं। जहां तक हो अपने मन को पूर्व-ग्रहों से मुक्त रखो। मनुष्य के संबंध में भी 'परीक्षान्तर भजंते' की लागू होती है। घृणा को अपने मन में स्थान न देना चाहिए। यदि रागात्मक संबंध रखना है। (संसार में रह कर वीतराग मुश्किल से ही रहा जा सकता है) तो अनुराग की वृत्ति को बढ़ाओ। बैर के स्थान में प्रेम का अनुशीलन करो घृणा के क्षेत्र की अपेक्षा प्रेम के क्षेत्र को विस्तृत बनाना वांछनीय होगा। अपने मित्र के मित्र को अपना सहर्ष बनाओ, किंतु उसके दुश्मन को अपना दुश्मन नहीं। प्रेम को व्यापक और गहरा बनाओ, और घृणा को यदि जीवन में स्थान देना ही हो तो विवेक से काम लो और उसका प्रयोग न्यूनातिन्यून मात्रा में करो और वह भी सात्विकता के साथ।

साम्यमय साधनों को अपनाओ

गृह शांति के कुछ बाहरी साधन भी हैं। जिस प्रकार 'मनः पूतं समाचरेत्' की बात है, उसी प्रकार वातावरण को पवित्र और साम्यमय बनाने की बात है। बाहर का भी भीतर पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। स्तोत्र, सामूहिक रामायण पाठ, प्रवचन, पारिवारिक उत्सव और पूजाएं तथा जन्मदिवस आदि साम्यमय वातावरण उपस्थित करने में अपना विशेष महत्व रखते हैं। इन चीजों का धार्मिक महत्व तो है ही, किंतु इनका सामाजिक महत्व नगण्य नहीं। होली, ईद, दीपावली, संक्रान्ति, विजयदशमी आदि पर्व चित्त में एक प्रकार का उल्लास और भावों की कोमलता उत्पन्न कर देते हैं। इनको प्रोत्साहन देना चाहिए और इनसे उत्पन्न होने वाली भावनाओं को पुष्ट करना चाहिए। यह तो नैमित्तिक अवसर हैं। नित्य के जीवन में भी काव्यशास्त्र विनोद से वातावरण की क्षुब्धता शांत होती है। काव्यशास्त्र विनोद के अतिरिक्त संगीत, चित्रकला और बागवानी का अनुशीलन चित्त को शांति देकर वातावरण का तनाव कम करते हैं और पारिवारिक सूत्रों को दृढ़ता प्रदान करते हैं। इन कलामय साधनों द्वारा चित्त की वृत्तियां अच्छी दिशा में लग जाती हैं और उनका उन्नयन हो जाता है। कला के अनुशीलन से फालतू समय का बेकार मन शैतान का कारखाना बनने से बचा रहता है। कला का साम्यमय प्रभाव अन्य वृत्तियों पर भी अच्छा पड़ता है। इन सब चीजों का अपना मूल्य तो है ही, किंतु मानवता की साधना

में भी इनका विशेष मूल्य है।

अन्त में पारिवारिक लड़ाई झगड़े कम करने के कुछ व्यावहारिक सूत्र दिए जाते हैं-

1. दूसरे के पक्ष और दृष्टिकोण को सदा महत्व दो।
2. वस्तुओं और मूल्यों का उचित मूल्यांकन करो। कम-से-कम छोटी चीजों के लिए मत लड़ो
3. पूर्ण निर्णयों से काम न लो।
4. अपने स्वभाव को यथासंभव लचीला और अनुकूलशीलन बनाओ।
5. अपने जीवन में घृणा की अपेक्षा प्रेम को अधिक महत्वपूर्ण स्थान दो।
6. जो अपने पर आश्रित हों उनके आश्रितता भावको अपनी उपेक्षा द्वारा ठेस मत पहुँचाओ।
7. दूसरे का जी दुखा कर उनसे काम लेने की अपेक्षा अपना काम स्वयं कर लो।
8. अपनी भाषा को मधुर और संयत बनाओ।
9. अपने समय को काव्यकलां आदि सांम्यवर्द्धक व्यसनो में लगाओ।
10. धन और आदर्शों से भी जन को अधिक महत्ता देना सीखो।
11. अपने अहं को सकुंचित कर सदा विनयपरायण रहो।
12. अपनी शक्ति पर गर्व मत करो, यदि करो तो दूसरों को लाभ पहुँचाने की शक्ति पर न कि दूसरों को हानि पहुँचाने की राक्षसी शक्ति पर।

नेता के आवश्यक गुण

शैले शैले ने माणिक्यं चन्दनं न वने वने ।

साधवो नाहिं सर्वत्र, भौक्तिकं न गजे गजे ॥

मसि कागद से अछूते महात्मा कबीर ने भी इसी से मिलता-जुलता भाव कहा गया है 'साधु न चलें जमात'। सच्चे साधुओं की भांति नेता भी सर्वत्र नहीं मिलता हैं। विरले ही सिंह पुरुष अपने में नेतृत्व के गुण लेकर आते हैं। सब लोग नेता हो भी नहीं सकते क्योंकि यदि सब ही नेता बन जाएं तो 'नाऊनों की बारात में ठाकुर ही ठाकुर,' चिलम भरने कौन जाए की समस्या उपस्थित हो जाएगी और फिर नेतृत्व किसका किया जाएगा।

सुव्यवस्थित और साम्यपूर्ण ढंग से कार्य-संचालन के लिए नेता का होना आवश्यक ही वरन् अनिवार्य है। राज्य हो, चाहे कोई व्यापारिक अथवा सामाजिक संस्थान, लक्ष्य और नीति की एकसूत्रता के बिना उसमें सफलता के दर्शन नहीं होते हैं। जब दो मुल्लों में मुर्गी हराम हो जाती है, तब जहां हर आदमी नेता बन बैठे तो वहां का अल्लाह ही बली हो सकता है। प्रजातंत्र राज्यों में भी प्रेसीडेंट की आवश्यकता होती है।

अन्योन्याश्रय संबंध

नेता स्वेच्छाचारी अधिनायक न बन जाएं, इसलिए सभाओं, संसदों और परिषदों की आवश्यकता होती है। इनके द्वारा जनता की इच्छाएं, अभिलाषाएं और संतोष-असंतोष के भाव प्रकट होते रहते हैं, किंतु ये संस्थाएं नेता को अनावश्यक नहीं बना देती हैं। सभाएं और संसदें नेता की नीति में संशोधन, परिवर्द्धन, पुष्टि और परिमार्जन करने के लिए होती हैं। 'सात पांच मिल कीजै काज हारे जीते ने आवे लाज,' फिर भी लोगों की चिंतनधारा और संकल्प-शक्ति का एक ही व्यक्ति के माध्यम से कार्यान्वित होना संभव होता है। नेता जनता या शासितवर्ग की नीति का संचालन करता हुआ भी स्वयं उनकी नीति और विचार धारा से प्रभावित होता रहता है। जनता और नेता का अन्योन्याश्रय संबंध होता है। वे एक

दूसरे को प्रभावित करते हैं।

जन्मजात और अर्जित गुण

देश की समृद्धि और संपन्नता के लिए नेता का अस्तित्व आवश्यक है, किंतु हर एक आदमी नेता नहीं बन सकता। नेता चाहे वंशानुगत रूप से बने, चाहे चुनाव जीतकर पद प्राप्त करें, चाहे प्रतिद्वन्द्वितात्मक परीक्षाओं के फलस्वरूप नियुक्त हो, अथवा बलपूर्वक पदारूढ़ हो, उसके लिए कुछ गुण आवश्यक होते हैं। उनमें कुछ जन्मजात होते हैं और कुछ शिक्षा-दीक्षा और अनुभव द्वारा अर्जित होते हैं।

आकृति और स्वरूप

वैसे तो यह बहुत अंश में ठीक है 'यत्राकृतिस्तत्र गुणाः भवन्ति' अर्थात् जहां सुंदर आकृति होती है वहां गुण भी होते हैं, किंतु संसार में विषभर कनक घटों की कमी नहीं है। इसलिए नेता को विशालकाय और स्वरूपवान होना आवश्यक तो नहीं वाछनीय अवश्य है। महाराज दिलीप के संबंध में कविकुलगुरु कालिदास ने लिखा है 'व्यूढोरस्कः वृषस्कन्धः' अर्थात् चौड़ी छाती वाले और बैल जैसे कंधे वाले।

नैतिक बल

मनुष्य का स्वरूप उसके शील और उसकी शक्ति का परिचायक होता है, किंतु आजकल भौतिक शक्ति की अपेक्षा नैतिक बल और कष्टसहिष्णुता अधिक उपादेय गुण माने जाते हैं। महात्मा गांधी इसके ज्वलंत उदाहरण थे। 'मनस्वी कार्यार्थी गणयति न दुःखं न च सुखम्' नेता को स्वस्थ, इन्द्रियजित् और प्रसन्नचित्त होना चाहिए 'प्रसन्न चेतसो ह्याशु बुद्धिः' पर्यवतिष्ठते अर्थात् प्रसन्नचित्त मनुष्य की बुद्धि निश्चल हो जाती है। नेता के चित्त की शांति उसके लिए एक आवश्यक गुण है। यह एक मानसिक गुण है, किंतु अच्छी पाचन-शक्ति और निद्रा के भौतिक गुण उसके सहायक होते हैं।

बुद्धि और भावों का संतुलन

नेता के अन्य मानसिक गुणों में बुद्धि और भावना का संतुलन आवश्यक है। भावना की वाष्प को बुद्धि का नियंत्रण चाहिए। उपनिषदों में बुद्धि को सारथी कहा गया है, लगाम की संज्ञा दी गई है 'बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च' भावना मनुष्य की शक्ति का स्रोत होती है: किंतु उसे बुद्धि के नियंत्रण की आवश्यकता रहती है।

चारित्रिक गुण

नेता के हृदय द्वार सत्य के लिए सदा उन्मुक्त रहते हैं वह हिरण्यमय स्वर्ण पात्र के लिए सत्य को छिपाने वाला नहीं बनता वह स्वर्ण, सुरा और सुन्दरियों के प्रलोभन से परे रहता है। किसी प्रकार के पूर्वाग्रह उसके स्वतंत्र निर्णय को कलुषित नहीं करते। वह नीजि मानपमान की परवाह नहीं करता। उसके संबंध में वह क्रोधवश बदला लेने की भावना से सदा मुक्त रहता है। नेता बिरादरीवाद तथा भाई-भतीजेवाद के मायाजाल में नहीं फंसता, वह बात का सच्चा और हिम्मत का पक्का होता है। उसमें साहस और उत्साह के गुण प्रचुर मात्रा में होते हैं। उत्साह वीर रस का स्थायी भाव है। हर्ष और आशावाद उत्साह के दो मुख्य सहचर हैं। उसकी कर्तव्य पालन में ही नहीं, वरन् उससे कुछ अधिक करने में प्रसन्नता होती है। काम के आगे वह आराम को हराम समझता है। अधिकार जमाने के लिए नहीं वरन् सेवा भावना से वह शासन-कार्य में प्रवृत्त होता है।

नेता में इन चरित्रिक गुणों का होना इसलिए आवश्यक है कि चरित्र के बिना नेता की बात में बल नहीं आता और न उसका समाज में आदर ही होता है। नेता बहुमत से चुना जाता है। राजनीतिक विचारों में उससे लोगों का मत-भेद भी हो, किंतु उसका चरित्र यथासंभव शंका से परे होना उसके विरोधियों को भी शांत रखता है। हर एक मनुष्य में थोड़ी-बहुत कमजोरियाँ होती हैं। शंका से परे होने का आदर्श है तो कठिन, किंतु आवश्यक है। कोरे उपदेश की अपेक्षा चरित्र और उदाहरण कहीं अधिक महत्व रखते हैं। नेता को 'पर उपदेश-कुशल' लोगों की संज्ञा में नहीं, वरन् 'जे आचरहिं' की कोटि में आना चाहिए।

प्रतिभावन

यद्यपि नेता के गुणों में चरित्रिक गुणों को प्रधानता मिलती है, तथापि उसके बौद्धिक गुण कम महत्व नहीं रखते। नेता को स्वभावतः मेधावी और प्रतिभावन होना आवश्यक है। स्थिति को समझने और उसके अनुकूल उपाय सोचने तथा काम करने में नेता को देर न होनी चाहिए। उसकी दृष्टि सर्वोत्तममुखी और सर्वग्रही होनी वांछनीय है।

शिक्षा दीक्षा

नैसर्गिक प्रतिभा के अतिरिक्त नेता में उदार शिक्षा का सुयोग होना आवश्यक है। उसको कला और विज्ञान दोनों का ही अनुशीलन लाभदायक होगा। इतिहास और काव्य उसको मानवी मनोवेगों के समझने और उनके उचित रूप से संयोजन में

सहायक होंगे। कला और संस्कृति का ज्ञान उसे औचित्य और सौंदर्य के आदर्शों से परिचित करा देगा। सौंदर्य बोध उसके मन में उस साम्यमयी स्थिति को जो सुव्यवस्था के लिए आवश्यक है जन्म देगा। विज्ञान का साधारण और विशेष ज्ञान उसको विभिन्न विकास कार्यों के समझने और उनकी गतिविधि के नियंत्रण और संचालन में क्षमता प्रदान करेगा। नेता के लिए विज्ञान का व्यौरेवार ज्ञान उतना आवश्यक नहीं जितना कि वैज्ञानिक पद्धति का चिंतन है। कला और विज्ञान की शिक्षा के अतिरिक्त थोड़ी नैतिक शिक्षा भी नेता के लिए वांछनीय है। देश हित के साथ अपने हित का तादात्म्य और कर्तव्यपालन की महत्ता उसकी शिक्षा के अनिवार्य अंग होना चाहिए।

परम्परा सम्बन्धी ज्ञान

संसार के सामान्य ज्ञान के अतिरिक्त नेता को देश के रीति रिवाज तथा परम्परागत व्यवहार का ज्ञान होना भी आवश्यक है। कृषि उद्योग आदि के क्षेत्र में परम्परागत विधियों के पालन में जो परिपक्वता आ जाती है वह उपेक्षा योग्य नहीं। हमको यह भी भूलना न चाहिए कि सब बातें बुद्धि के शिकंजे में नहीं कसी जा सकती। हर योजना में मानवी और प्राकृतिक तत्वों की अनिश्चिता की गुंजाईश रखनी होगी। हम प्रकृति और परम्परा से लड़ते अवश्य हैं और बहुत अंश में सफलता भी प्राप्त करते हैं। किन्तु प्रकृति और परम्परा भी अपना बदला जानती है। उसके लिए नेता को तैयार रहना चाहिए।

आदेशों में सादगी और सीधापन

नेता को बुद्धि विशारद और सूझबूझ का मनुष्य होना आवश्यक है। किन्तु वह बौद्धिक पेचीदगियों और व्यौरे के जाल को इतना दृढ़ और घना न बना दे कि वह स्वयं उससे निकल न सके और आदेश लेने वाले भी असंमजस में पड़ जाये। अतिव्यवस्था भी कभी-कभी अव्यवस्था का रूप धारण कर लेती है। नेता के पास थोड़ी ही कार्यसूत्र हो किन्तु वे उसके अनुभव से प्राप्त किये हुये हों और व्यवहार में पुष्ट हो चुके हों। नेता के आदेश और उसकी आयोजनाएं इतनी सीधी और स्पष्ट होनी चाहिए कि वे उसके अधीनस्थ कर्मचारियों की समझ में शीघ्र आ सकें और उनके क्रियान्वित करने में किसी भ्रान्ति का सामना न करना पड़े।

निर्णयों की तात्कालिता

नेता को अपने अनुयायियों को एक निश्चित ध्येय तक ले जाना होता है। उस लक्ष्य या ध्येय का उसे स्पष्ट बोध होना चाहिए। लक्ष्य यदि धुंधले में हो तो भटकना

पड़ता है अपने लक्ष्य तक पहुंचने का उसमें दृढ़ संकल्प होना आवश्यक है। संकल्प को पूरा करने के साधनों के निश्चित करने के लिए उसमें तुरंत निर्णय करने की शक्ति परम वांछनीय है। व्यक्ति, संस्था तथा राष्ट्र तीनों के जीवन में समय का महत्व होता है। 'समय चूकि पुनि का पछिताने। समय पर काम में लाई हुई अपूर्ण योजना भी समय बीत जाने पर बनाई हुई पूर्ण योजना से कहीं अधिक महत्व रखती है। निर्णय तत्कालीन होते हुये भी विचारपूर्ण होना चाहिए। दीर्घ सूत्रता नेता के लिए दोस्त बन जाती है किन्तु स्थिति का पूर्ण अध्ययन किए बिना निर्णय कर लेना भी उसके लिए क्षम्य नहीं होता। एक बार निर्णय कर लेने पर जब तक उसके बदलने के प्रबल कारण न हों तब तक उसमें अरूढ़ रहना नेता में सराहनीय गुण माना जाता है।

नैतिक बल

नेता को अपने निर्णयों पर अरूढ़ रहना ही आवश्यक नहीं वरन् उनका पूर्ण उत्तरदायित्व भी स्वीकार करना चाहिए। नेता में पूर्ण नैतिक बल होना चाहिए। उसके कार्य में बाधक और साधक तत्वों का पूर्ण ज्ञान होना वांछनीय है। बाधक लोग, चाहे वे मित्र क्यों न हों उनके निराकरण का साहस उसमें होना चाहिए। उसे कभी-कभी निर्मम और कठोर होना पड़ेगा। किन्तु निर्दय और दुराशय होने का कोई अधिकार नहीं। लोकोत्र और लोगों के चरित्र 'वर्जादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि' होते हैं। बदला लेने की भावना, उसको स्पर्श तक न करनी चाहिए। वृथा अपवादों से स्वयं बचना और दूसरों को बचाना उसके लिए श्रेयस्कर होगा।

नेता की आयोजनाओं और मनसूबों को कार्यान्वित करने के लिए उसके पास ऐसे अनुरक्त और कार्यक्षम सहायक होना वांछनीय है। जो समय समय पर उसकी निर्धारित नीति के अनुकूल छोटे पूरे निर्णय आप कर सकें। उसके सहायकों में वे शिल्पी और विशेषज्ञ भी शामिल हैं। जिनकी चतुराई और कार्यक्षमता पर आयोजन की सफलता निर्भर रहती है। ऐसे लोगों को स्वतंत्रतापूर्वक काम करने की छूट देना वांछनीय होगा। किन्तु उनके द्वारा दी गई सलाह या जानकारी की सत्यता और उपयोगिता की जांच करने का भी ध्यान रखना आवश्यक है। सुपरिचित और सुपरिक्षित निम्नस्थ अधिकारियों की बार-बार परीक्षा करना उनमें असंतोष पैदा कर देता है। असंतोष वफादारी में बाधक होता है। फिर भी इस बात के लिए सचेत रहना आवश्यक है कि निर्धारित नीति का ठीक-ठीक पालन हो रहा है और निजी स्वार्थ सार्वजनिक हित में बाधक तो नहीं हो रहे।

एकमात्र ध्येय

नेता का केवल एक ही बात में अनुराग होना चाहिए वह है उस लक्ष्य की, जिसको अपने सामने रखा है, प्राप्ति उसके आगे सब बातें गौण समझनी चाहिए। वह सद्ब्यसनों का अनुशीलन करे किन्तु उनमें आसक्त न होने पाए। वे उसके चित्त की स्फूर्ति और एकाग्रता बढ़ाने के साधन मात्र हों, साध्य न बनें।

मित्तभाषिता

शिष्टता और मिलनसारी खोये बिना नेता को मित्तभाषी होना चाहिए। राष्ट्र के मामले में गोपनीयता एक उपादेह गुण है। आत्मश्लाघा का रोग गोपनीयता में बाधक होता है। नेता को इस रोग से बचना क्षेयस्कर होगा। मौन एक मनोवैज्ञानिक दूरी उत्पन्न कर शक्ति और अधिकार भावना को बढ़ाएगा। यह शक्ति हित साधन के लिए हो, न कि उत्पीड़न या आंतकित करने के लिए अर्जित करनी चाहिए। यद्यपि यह ठीक है जनसंपर्क के लिए आवश्यक मिलनसारी एवं शिष्टता और गाम्भीर्य की सीमा रेखा निर्धारित करनी कठिन है, तथापि मौन ही अधिक श्रेयस्कर है। नेता को चाहिए कि वे राष्ट्र के गोपनीय तथ्यों को राष्ट्र की अमूल्य धाति समझें। वह उतनी ही बात कहें जितनी की परिस्थिति की मांग हो और उससे ही कहें जिससे कहना अनिवार्य हो। बात उसी समय मुंह से निकाली जाये जिस समय उसके कहे जाने की जरूरत हो। अधिक प्रगल्भता घातक होती है।

सावधानी और सब्र

योजनाओं की सफलता के लिए नेता को सतत सावधानी और सब्र से काम लेना भी आवश्यक है। योजना मात्र दे देना पर्याप्त नहीं होता। नेता को यह सोच लेना चाहिए कि जिन लोगों को योजना के कार्यान्वित करने का भार सौंपा गया है वे मनुष्य हैं और कोई भी मनुष्य गलती कर सकता है। योजनाओं के चरितार्थ होने में कई कारण बाधक हो सकते हैं। योजना बनाते समय स्वयं नेता को पूरे तथ्य न मिले हों योजना की भाषा संदिग्ध हो सकती है। उसके अधीनस्थ अधिकारियों की समझ में भूल हो जाना संभव है। फिर यह भी हो सकता है कि जिन-जिन लोगों को कार्यान्वित करने का भार सौंपा गया है वे अपनी स्वतंत्रता की सीमा का उल्लंघन कर जायें अथवा योजना उन लोगों की कार्यक्षमता के लिए अधिक पेचिदी और दुष्कर हो। निम्न वर्ग के अधिकारियों की पारस्परिक ईर्ष्या उसकी सफलता में बाधक हो सकती है। नेता को पारम्भिक विफलताओं से विचलित न होना चाहिए, वरन् असफलता के कारणों की सावधानी से छानबीन कर उनका निराकरण कर देना

आवश्यक है।

प्रयत्न सातत्य

प्रयत्न का आरंभ करके नेता को निश्चित न हो जाना चाहिए। वरन् उसे सतत उद्योग करते रहना आवश्यक है। एक बार सफलता मिल जाने पर भी प्रयत्न में ढीलाव न आने देना कुशल नेता का कर्तव्य हो जाता है। दुनिया में कोई वस्तु स्थाई नहीं होती। स्वतंत्रता और सफलता इसके अपवाद नहीं हैं। एक कटा छंटा साज सम्हाल किया हुआ बगीचा नित्य की देखभाल की अपेक्षा रखता है। बिना देखभाल और झाड़ु बुहार के एक सुरम्य उद्यान भी खरपतवार और घास कुड़े से संकुल और विश्रुति बन सकता है।

साम्य और अगांगीभाव

नेता के आदेश बावन तोले पाव रति स्पष्ट होने चाहिए उनमें भ्रांति की गुंजाइश न हो। केवल आदेश देना ही पर्याप्त नहीं होता, किन्तु योजनाओं के उन्नति क्रम तथा कार्यकर्ताओं की कठिनाईयों से परिचित रहना भी आवश्यक होता है। नेता को चाहिए कि अपने अधीन विभागों में संतुलन बनाए रखे। उनमें ईर्ष्या भाव या असंतोष उत्पन्न न होने दे। उसे विभिन्न विभागों में साम्य और अगांगीभाव भावों की महत्ता और अंगी की समृद्धि और उन्नति में योग देनेकी भावना का प्रसार करते रहना चाहिए।

जीवन विधि से परिचय

नेता को अपने अधीनस्थ अधिकारियों और कर्मचारियों की जीवन विधि और उनकी समस्याओं से परिचित रहना चाहिए ताकि वह उनकी कठिनाईयों का निराकरण कर उनकी कार्यक्षमता बढ़ाने में योग दे सके। स्नेह और आदर पाने के लिए नेता को अपने व्यवहार में आदर और स्नेह को स्थान देना आवश्यक है। अपने अधीनस्थ कर्मचारियों का साहस बनाए रखना नेता का परम कर्तव्य है। संकट के समय स्वयं संकट उठाना और काम में योग देना नेता का एक सराहनीय गुण समझा जाता है। नेता को चाहिए कि वह अपनी सफलताओं और विफलताओं का विवरण विश्वस्त सूत्र से प्राप्त करे। किन्तु इन विवरणों का अक्षरशः विश्वास न करे। कानों की सुनी की अपेक्षा उसे निजी निरीक्षण का अधिक आश्रय लेना उचित है। अधिकारियों के भेजे हुये विवरण प्रायः एकांगी होते हैं। निजी निरीक्षण द्वारा इस एकांगिता को दूर कर लेना आवश्यक है। नेताओं में दूसरे पक्ष के प्रति उदासनीता का दोष अक्षमय हो जाता है। लोग सहृदय नेता की दो बातें सुनने को

तैयार रहते हैं। मारने का अधिकार उसी का होता है जो प्यार करता है। उदासीन और गुमसुम रहने वाले नेता की अपेक्षा कस कर काम लेने वाले हंसमुख नेता का अधिक आदर होता है।

शक्य और संभव

नेता को चाहिए कि वह उच्च अधिकारियों और निम्न वर्ग के कार्यकर्ताओं में संतुलन बनाए रखे। न उच्च वर्ग के अधिकारियों की महत्ता को कम होने दे। न उनके अधिकारों के दुरुपयोग के प्रति उदासीन रहे। उसका कृपा भाव सब पर एक सा रहा। किन्तु उसका अनुचित लाभ कोई न उठाने पाये। वह एक वर्ग की प्रसन्नता के लिए दूसरे वर्ग के लोगों को अप्रसन्न नहीं करता। न वह एक वर्ग के हित के लिए दूसरे वर्ग के हितों का बलिदान करता है। नेता को चाहिए कि वह शक्य और संभव का सदा ध्यान रखे। जनता की विभिन्न रूचियों और प्रवृत्तियों का अध्ययन कर वह यह पता लगा सकता है कि नवीन प्रयोग कहां तक चलाये जा सकते हैं और कहां तक नहीं।

जनता की नब्ज

नेता की उंगलियां जनता की नब्ज पर रहती हैं। जब वह तापमान को बढ़ता हुआ देखता है, तब बढ़ी हुई कार्यशीलता को विराम दे देता है किन्तु अपने पर्यटकों को छोड़ता नहीं। वह जनता के रोष और तोष के कारणों को जानने की कोशिश करता है। यदि कोई शासन जनता को गरीबी की ओर ले जाता है अथवा उनकी परम्परागत स्वतंत्रताओं का हनन करता है और उनके पारिवारिक जीवन की सुख सुविधाओं में बाधक होता है, तो जन समुदाय का मानसिक तापमान ऊंचा चढ़ जाता है। अच्छा नेता ऐसी विषम स्थिति से बचाता रहता है। जनता साधारणतया ऐसे आदमी के ही पीछे चलने को तैयार रहती है जो अपने लक्ष्य का स्पष्ट बोध रखता है और जो देश तथा जाति के हित को सर्वोपरि महत्व देता है।

दृष्टिकोण की व्यवहारिकता

नेता के शक्य और संभव का ज्ञान केवल निषेधात्मक ही नहीं होता, वरन् वह यह भी जानता है कि प्रोत्साहन और प्रयत्न से कितनी सफलता मिल सकती है। उसका दृष्टिकोण भी आशावादी होता है। वह यह नहीं कहता कि देश मृत प्रायः हो रहा है। वरन् वह यह कहता है कि देश सो रहा है। उसे और जगाना उसका कार्य है।

नेता कि कथनी और करनी में विशेष अंतर न होना चाहिए। उसके मनोरथ

केवल मन के रथ न हो, उसके वचन खोखलने और निराधार न हों वरन् उनके पीछे प्रयत्न और संकल्प हों।

नेता का दृष्टिकोण व्यवहारिक हो। वह जादू से पृथ्वी पर स्वर्ग उतार लाने का प्रयत्न न करे। वह पूर्णतया निर्दोष आयोजनाओं की मृगमरीचिका में न पड़े।

वह नवागत विचारों,, नए प्रयोगों नूतन आविष्कारों को आदर देता हुआ भी उनकी चकाचौंध में न पड़े। परिस्थितियों के अनुकूल जितना संभव हो उसी मात्रा में उन्हें अपनाए। नेता को चाहिए कि वह सुधारों और नवीनताओं के समावेश में अपने अहम अथवा बौद्धिक आभिजात्य की भावना को न आने दे। वह आदर्श व्यवस्था का मोह छोड़ दे। संकुचित दृष्टि वाले दल नेता के आदर्शों और सिद्धांतों के पीछे देश के हित और उसकी सुख-शांति का बलिदान करने को तैयार हो जाते हैं। सच्चा नेता देश की सुख-शांति को सिद्धांतों से भी अधिक महत्व देता है। वह देश की सुरक्षा और उसमें साम्य और समृद्धि लाने को प्राथमिकता देता है।

हास मनोवृत्ति का निषेध

नेता को चाहिए कि वह उच्च आदर्शों को सामने रखता हुआ भी सफलताओं की आंशिकता से हताश न हों। समुदाय, वर्ग, संस्था या देश जितना बड़ा होगा, पूर्ण परिष्कृति उतनी ही कठिन होगी। इस बात को स्वीकार करते हुये उसे प्रयत्न सातत्य में ढिलाव न आने देना चाहिए। उसमें सावधानी और सब्र का अमित भंडार होता है। वह सदा यह आदर्श वाक्य सामने रखता है- 'हारिये न हिम्मत बिसारिये न राम'

जनता का कर्तव्य

जहां नेता पर इतना उत्तरदायित्व और कर्तव्य भार रहता है वहां जनता का भी यह धर्म हो जाता है कि वह उसे सफल बनाने में योग दें। जहां जनता का यह अधिकार है कि नेता से अमिश्रित रूप से उसके हित साधन की अपेक्षा करे, नेता का भी यह अधिकार हो जाता है कि उसका नेतृत्व कुछ काल तक निश्चित और अबाधित रहे।

नेता को जब तक पूरा समय न दिया जाये, तब तक वह क्या सफलता प्राप्त करेगा ?

आलोचना

सार्वजनिक कार्यों की आलोचना बुरी नहीं है, किन्तु वह आलोचना सहृदय और रचनात्मक हो। नेता को अपना ही आदमी समझ कर उसके शासन में सुधार लाने की दृष्टि से जो सुझाव दिये जायें उनका स्वागत होना चाहिए। नेता के मार्ग में पग पग पर रोड़े अटकाना देशहित के विरुद्ध है।

हम स्वतंत्र राष्ट्र कहे जाने के तभी अधिकारी कहे जा सकते हैं जबकि हम अपने विधिवत चुने हुये या नियुक्त नेताओं या अधिकारियों का मान करना सीखें और उनको सहयोग प्रदान करें, विरोधीदल की आलोचना को सावधानी से सुने और देश की समृद्धि और सुरक्षा को ध्यान में रख कर सार्वजनिक हितों को वैयक्तिक और दलगत स्वार्थों की अपेक्षा सर्वोपरि महत्व दें। जनता का पोषण पाकर नेता का भी यह धर्म हो जाता है कि वह उनके हित को सर्वोपरि समझें। वह उसके लिए सब कुछ बलिदान करने को तैयार रहे। वह अधिकार से नहीं वरन् सेवाभाव से शासन करे और जनता के सहयोग से उसे उन्नति और समृद्धि के मार्ग में अग्रसर करे। वह अपने दायित्व को देश की गौरवपूर्ण थाति समझे। जनता और नेता के पूर्ण सहयोग में राष्ट्र की उन्नति और सफलता नीहित है।

मुखिया मुखसो चाहिए खान पान कहुँ एक।
पालइ पोसइ सकल अंग, तुलसी सहित विवेक ॥

पारिवारिक जीवन और निजी सम्बन्ध

घर दो अक्षरों का एक लघुकाय शब्द है किंतु इसकी अर्थपरंपरा बड़ी गंभीर और संकुल है। इस शब्द से ईंट-चूने, लोहे- लकड़ी, से बने हुए स्थूल आयाम वाले ढाँचे के अतिरिक्त धूप-छाहीं आलोक-तिमिरमयी, हर्षामोद- विषाद की झिल-मिल रेखाओं से जगमगाती एवं भावो और अभावों से भरपूर एक सजीव संस्था का बोध होता है। इसमें प्रायःसभी आबाल-वृद्ध, पाले-पोसे जाते, चलते-फिरते और जीवन यापन करते हैं।

यह संस्था सबसे प्राचीनतम, सहज और नैसर्गिक है। दो सहज वृत्तियाँ इसकी दृढ़ आधार शिलाएं हैं। वे हैं योन-भावना और वात्सल्य भावना। इसको धर्म और विधि-विधान से पोषण मिला है और मानव शिशु की दीर्घ-कालव्यापिनी पर निर्भरता और वार्द्धक्य की दयनीय विवशताओं तथा शीतोष्ण एवं क्षुत् पिपासा की आवश्यकताओं ने इसे अनिवार्य बना दिया है।

‘अतिपरिचयादवज्ञा’ चिर सातत्य के कारण घर से ऊब कर लोग उससे दूर भागना चाहते हैं, किंतु ‘बोहित के काग लो’ (जहाज के मस्तूल पर बेटे कौआ के समान) वे लौटकर घर का ही सहारा लेते हैं ‘एषां कवापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः’। घर ही अशरण का शरण -स्थल बनता है। ‘अन्तर्हू तोहि तजैगें पामर तू काहे न तज अब ही तैं’ के प्रचारक और श्रुति- सम्मत हरिभक्त पथ के अनुयायी विरक्त महात्मा तुलसीदासजी ने अपने लिए परम श्रेयस राम-नाम को ‘सुखद अपनो सो घरू है’ कह कर घर की प्रतिष्ठा बढ़ाई है।

भिन्नरूचिहीं लोकाः

यह विकर्षण और आकर्षणमय विरोधाभास अकारण नहीं। विकर्षण इसलिए कि सब लोग अपने को घर की सुख-सुविधाओं के लिए समान अधिकार समझते हैं और एक घर में रहते हुए ‘भिन्न रूचिहीं लोकाः’ की उक्ति चरितार्थ होती है। किसी को रेडियो की गुनगुनाहट ही नहीं उच्चस्तरीय ध्वनि के बिना खाना हजम

नहीं होता और किसी के लिए रेडियो को आस्तित्व उसके मनन-चिंतन और अध्ययन में बाधक होता है। किसी को घर की फूलों से सुसज्जित और सुवासित करने का शौक है तो किसी को फूलों की गंध से जुकाम का प्रकोप हो जाता है। माँ बेटियों को गृह-नीति के संबंध में बातचीत किए बिना नींद नहीं आती तो वह वार्तालाप पिता की नींद में बाधक होता है।

दम्पति में से एक यदि लड़कों को ढील देते रहने के पक्ष में हैं तो दूसरा साथी 'ताड़ने बहवो गुणा:' के पक्ष में है। भारतीय घरों में प्राचीन और नवीन का संघर्ष नित्य घटित होने वाला दृश्य है। यदि गृह-स्वामिनी पैरों को सौर से बहार होने में रोकने के लिए सुख-सुविधाओं को कुछ नीचे स्तर पर रखना चाहती है तो घरके अन्य लोग उसे स्तर को सामर्थ्य से उपर ले जाने या प्रत्येक व्यक्ति की रूचि के अनुकूल बनाने को अग्रह करते हैं। नवयुवकों के आदर्श ऊंचे होते हैं और वास्तविकता कहीं पीछे रह जाती है- 'चाहिए अमी जग जरूँ न छाछी' की बात हो जाती है। यही विषमता संघर्ष का कारण बनती है। सहज संबंधों की सहिष्णुता इस संघर्ष पर पर्दा डालने में समर्थ नहीं होती। परिवार में भावाभिव्यक्ति की भी छूट काफी होती है। परिवार में हर समय साथ रहने से अव्यक्त भाव भी आकारेंगित तथा मुखमुद्रा से सहज में व्यक्त होने लगते हैं और क्रिया-प्रतिक्रिया चलने लगती हैं। फलस्वस्व परिवार से पलायन करने की प्रवृत्ति व्यक्त होने लगती है।

परिवार के सुख

परिवार से पलायन की अपेक्षा उसमें रहकर अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह कर उसका उन्नयन करना अधिक श्रेयस्कर है। परिवार में हमारा जन्म हुआ। हमने उसकी संचित संपत्ति से अपना पोषण प्राप्त किया है। उसके सुयश से लाभ उठाया है। दुःख सुख में उसकी शरण ली है। बीमारी में हमको चिंतायुक्त वात्सल्य ओर स्नेह मिला है। उससे हमें समय पर रूचि के अनुकूल सस्ता से सस्ता प्रेमाभिषक्त भोजना मिला है। परिवार के लोगों से हमें वास्तविक कुशल कामनाएं प्राप्त होती हैं। हमारे देर से घर लौटने पर हमारी प्रतीक्षा की जाती है। महाराज पृथु की भांति सहस्र कर्ण हो हमारी पद-ध्वनि सुनने को उत्करण रह जाता है। किसी के लिए चिंतन होने और किसीकी चिंता किए जाने का सुख परिवार में ही मिलता है। हमारी सफलताओं पर घर वालों का वक्ष-स्थल स्फीत हो जाता है और हमारी विफलताओं पर सर नीचा हो जाता है। हमारे हितों से तादात्म्य करने वाले सहज में प्राप्त रहते हैं। हम संसार में अकेले होने का

अनुभव नहीं करते।

परिवार में हमें एकांत के साथ निजीपन और सहवास सुख का आनंद मिल जाता है। परिवार में हम समाज के कृत्रिम बंधनों और औपचारिकता से मुक्त रहते हैं और अपने नीजि रूप में दिखाई देते हैं। जीवन में एक संस्थान चाहिए जहां नितांत एकांत की ऊब भी न हो और सामाजिक जीवन को औपचारिकता भी न हो। वह स्थान परिवार ही है जहां हम जैसे चाहें तैसे स्वतंत्रता के साथ रह सकते हैं, जो चाहे सो कर सकते हैं, जहां हमारा हर समय स्वागत किया जा सकता है और जहां निकम्मे होने पर भी खप सकते हैं। घर के जीवन में खराबियां संभव हैं, कलह और कर्कशता का साम्राज्य हो सकता है किंतु लेखा-जोखा कुल मिलाकर वरिष्ठता परिवार के पक्ष में ही बैठती है। पति-पत्नी में मनमुटाव हो गया हो, उसमें यदि अहंभाव को दूर रखा जाए तो बहुत कुछ खाई पट सकती है। इसके अतिरिक्त घर के और भी बहुत से संबंध हैं जो हमें घर की ओर आकर्षित करते हैं। सबसे पहले बाल-बच्चे हैं, उनके आस्तित्व में लाने के हम ही उत्तरदायी हैं, फिर वे हमारी खींच तान और विरक्ति को शिकार क्यों बने। इसके अतिरिक्त परिवार में भाई-भाई एवं भाई-बहन के पवित्र संबंध हैं जो उपेक्षणीय नहीं हैं।

आदर्श घर

सब घर आदर्श नहीं होते। आदर्श घर ढूंढने पर ही मिलते हैं, फिर भी हर एक सद्गृहस्थ का कर्तव्य है कि अपनी तरफ से ऐसी स्थिति पैदा करे जो घर को आदर्श बनाने में सहायक हो। पारिवारिकता हिन्दू जीवन की विशेषता है। अन्य देशों में भी पारिवारिक सहवास का सुख प्रचुर मात्रा मिलता है किंतु भारतवर्ष में पारिवारिकता के पीछे जो धार्मिक परंपरा और तत्परता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। भारतीय साहित्य में पारिवारिक जीवन के बड़े मनोरम चित्र मिलते हैं। गृहस्थाश्रम को सब आश्रमों में ज्येष्ठता और वरिष्ठता प्रदान की गई है। एक अच्छे घर का आदर्श नीचे के श्लोक में इस प्रकार दिया गया है—

सानन्दं सदनं सुताश्च सुधियः कान्ता मनोहारिणी ।

सन्मित्रं सुधनं स्वयोषितिरतिः सेवारताः सेवकाः ॥

आतिथ्यं सुरपूजनं प्रतिदिनं मिष्टान्नपानं गृहे ।

साधोः संग उपासना सततं धन्यो गृहस्थाश्रमः ॥

सानन्दं सदनं

इससे अभिप्राय है कि जिस घर में लोग नीरोग हों जो घर धनधान्य से भरापूरा हो, साहित्य, संगीत कला से सुसंपन्न हो और हासविलास की चहल-पहल से युक्त हो। भौतिक संपन्नता और मानसिक साम्य अच्छे घर की विशेषताओं में से हैं। इसलिए प्रत्येक मनुष्य को शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक शांति के अर्जन में प्रयत्नशील रहना चाहिए।

सुताश्च सुधियः

सुता: में पुत्र, पौत्र, दुहिताएँ, दोहित आदि सभी आ जाते हैं। उनके लिए एक ही गुण अपेक्षित माना है, वह है 'सुधियः' अर्थात् अच्छी बुद्धि वाले अच्छी बुद्धि सद्गुणों की कुंजी हैं। तभी तो गायत्री मंत्र में बुद्धि को अच्छी प्रेरणा देने की प्रार्थना की जाती है। सुमति ही नाना संपत्तियों का स्रोत है 'जहां सुमति तहाँ संपत्ति नाना।' सुमति में संपत्ति संलग्न रहती है किंतु सुमति में उस साम्यमय वातावरण की भी, जो मानसिक शांति के लिए अनिवार्य है, व्यञ्जना हो जाती है। सुधी पुत्र पौत्र अपने बड़ों का आदर करेंगे और तुच्छ स्वार्थों के लिए घर का साम्यमय वातावरण न भंग करेंगे।

पुत्र ही भावी गृह-स्वामी और पारिवारिक जीवन के केंद्र बनते हैं, उनके सुधियः होने से सभी पारिवारिक संबंध सुधर जाते हैं। माता-पिता अपने पुत्र-पौत्रों की निस्वार्थ सेवा करते हैं। वे अपनी संतान को भौतिक सुख ही नहीं प्रदान करते वरन् उनकी शिक्ष-दीक्षा में सहायक होते हैं। माता-पिता संतान के सुख के लिए अपने सुख का बलिदान करते हैं। वे यदि बदले में आदर सम्मान और सहायता भी चाहे तो उनकी मांग अनुचित नहीं कही जा सकती है। संघर्ष प्रायः इस बात पर होता है कि माता-पिता अपने विस्तृत अनुभव के आधार पर अपनी राय को अधिक महत्व देते हैं और लड़के अपनी चाल चलना चाहते हैं। वे नवीन से प्रभावित रहते हैं। जहां छोटों को बड़ों की राय का आदर करना चाहिए वहां बड़ों को भी उदारतापूर्वक यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि परिवर्तन संसार का नियम है और भावी समाज का नेतृत्व युवकों के हाथ में है। बड़े-बुढ़े बच्चों को अपने स्नेह का दान देते हुए छोटों का नियंत्रण करते रहें किंतु अपनी बात को कड़ाई से मनवाने का उद्योग न करें। बहुएं अपनी ससुओं का आदर करें किंतु सास भी अपना अधिकार सौंपने को हर समय प्रस्तुत रहें। भाई-भाई के प्रेम का आदर्श हमें रामचरित मानस से मिलता है। दुस्तज्य सुरेप्सित राजलक्ष्मी दोनों भाईयों के बीच में फुटबाल की भांति

इधर से उधर टुकराई गई। भरतजी राजभर को सम्हालते हुए भी बिना वनवास के वैरागी बने हुए अपने भाई की चौदह वर्ष तक प्रतीक्षा करते रहे। लक्ष्मणजी ने भी बिना वनवास के राम का वन में साथ देने के लिए सेवाव्रत धारण किया। उनकी माता कहती है 'तुम्हरे ही भाग राम बन जाहीं।' इससे अच्छा सुमति का उदाहरण खोजने से भी नहीं मिलेगा। निजी सम्बन्धों में दोनों ओर से त्याग और बलिदान की भावना चाहिए। बिना याचना के एक दूसरे के हित करने की उत्सुकता और तत्परता निजी सम्बन्धों की विशेषता है।

कान्ता मनोहारिणी

स्त्री के लिए शारीरिक सौंदर्य तो आवश्यक है ही किन्तु शील, कर्तव्य पालन और निष्ठ भाषण भी अत्यन्त वांछनीय है। वचनों की कर्कशता सौंदर्य के आकर्षण को मंद कर देती है और वचनों की कोमलता कुरूप को सुरूपता प्रदान करती है। सौंदर्य तो ईश्वर की देन है, वह स्वास्थ्य, सफाई और प्रसाधनों से बढ़ाया जा सकता है किन्तु शील, कर्तव्यपालन और निष्ठ भाषण ऐसे गुण हैं जो सहज स्वभाव और शिक्षा दीक्षा पर निर्भर करते हैं। इन गुणों के घटाने बढ़ाने में घर के लोगों का भी हाथ है। वे ऐसा अनुकूल वातावरण उपस्थित करें जिससे ये गुण पनपे और प्रकाश में आये और ऐसी बातों से बचें जिनसे उत्तेजना पैदा हो।

सन्मित्रम्

सद्गृहस्थ के लिए अच्छे मित्रों का होना आवश्यक है जो निस्वार्थ परामर्श दे सकें और संकट पड़ने पर काम आयें। रामचरित मानस में सन्मित्रम् के लक्षण इस प्रकार दिये गये हैं—

जे न मित्र दुख होहिं दुखारि । तिन्हहिं विलोकत पातक भारी

कुपथ निवारि सुपंथ चलावा । गुन प्रगटइ अवगुणनन्हि दुरावा ॥

देत लेत मन संक न धरई । बल अनुमान सदा हित करई ॥

विपत्तिकाल कर सतगुन नेहा । स्तुति कह संत मित्र गुण एहा ॥

सच्चा मित्र विपत्तिकाल में साथ नहीं छोड़ता है वरन् सोगुनै स्नेह का परिचय देता है। मित्र के द्वारा घर के लोगों से बाहर के लोगों को भी सलाह मिल जाती है। घर के लोगों की विचार धारा प्रायः गृहस्वामी की सी होती है। मित्र मित्र से अप्रिय सत्य के कहने का भी अधिकार रखता है। सच्चा मित्र मित्र को अप्रसन्न करने के भय

से हित वचन कहने से डरता नहीं है। वह मित्र की क्षणिक प्रसन्नता की अपेक्षा अपने साथी के हित का अधिक ध्यान रखता है।

सुधनम्

अच्छा धन, गृह-स्वामी की आजीविका सम्यक् आजीविका होनी चाहिए। पापार्जित कमाई सतगृहस्थ के लिये कलंक है। गृहस्थी तभी सुखी रह सकती है जब उसकी आजीविका वैध मार्गों से अर्जित हो। पाप से अर्जित कमाई का सुखोपभोग चित्त में ग्लानि उत्पन्न करता है।

सुयोषिति रतिः

अपनी स्त्री में रति से अभिप्राय है एक नारि व्रत का। गृह स्वामी का स्वेच्छाचार पति पत्नी के बीच कला का मूल स्रोत है। जब स्त्री के लिये एक पतिव्रत का आदेश दिया जाता है तब पुरुष पर भी एक पत्नीव्रत का प्रतिबंध लगाना न्याय संगत हो जाता है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम चन्द्र जी ने एक पत्नीव्रत का आदर्श निभाया तभी उनके राज्य में सभी लोग पति और पत्नी व्रत को निभाते थे।

वैसे भी पति अपना व्रत निभाकर स्त्रियों से व्रत पालन करवाने का नैतिक अधिकार रखते हैं। दोनों ओर से कर्तव्यों का निर्वाह वह सामंजस्य की स्थिति पैदा कर देता है जो पृथ्वी पर स्वर्ग अवतरित कर सकता है।

सेवारतः सेवकाः

सेवक भी घर के आवश्यक अंग हैं। वे गृह स्वामी और गृहस्वामिनी के गृहस्थ भार को हल्का करते हैं। आजकल की अर्थ व्यवस्था में सेवक लोग दुर्लभ होते जाते हैं। फिर भी उनको आवश्यकता का अनुभव होता ही रहता है। सेवक हो तो आज्ञाकारी हो नहीं तो उत्तर देने वाले भृत्य (नौकर) 'ससर्पे च गृहेवास' के बराबर भय कारक बन जाता है।

दुष्टा भार्या षठं मित्रं भृत्यश्चोत्तरदायिनः

ससर्पे च गृहेवासो मृत्युरेव न संशयः ॥

जहां नौकर का कर्तव्य है कि वह सेवा परायण हो। वहां स्वामी का भी कर्तव्य है कि वह उसके साथ मनुष्योचित व्यवहार करे, उसके दुख सुख की खबर रखे और उसके स्वाभिमान को ठेस न लगने दे।

आतिथ्यं

अतिथि को 'परम गुरु' कहा गया है। धार्मिक दृष्टि से अतिथि सेवा सर्वभूत हिते: रति: की कोटि में आता है। वह पंच महायज्ञ का अंग है। किन्तु इसका एक

महत्वपूर्ण लौकिक पक्ष भी है। घर के लोगों के सदा एक साथ रहने से वातावरण में जो एकतानता आ जाती है वह अतिथि के आ जाने से किसी अंश में दूर हो जाती है। दुनिया के संपर्क में आने के नये अवसर मिलते हैं और नये विचारों के लिए वातायन से खुल जाते हैं। अतिथि के सामने सब लोग अच्छे से अच्छे रूप में प्रकट होना चाहते हैं और घर की व्यवस्था में भलाई की ओर अंतर पड़ जाता है। अतिथि सेवा में हम 'हम हमार' के संकुचित घेरे से किसी अंश में बाहर निकल कर कुछ उदारता की ओर अग्रसर होते हैं और सेवा का सुख प्राप्त करते हैं। अतिथि भी ऐसे होने चाहिए कि जो आतिथ्य धर्म का अनुचित लाभ न उठाये और रावण की सभा में अंगद के पैर की भांति न जम जाएं।

सुर पूजनम् अर्थात् देवाराधनम्

इसमें ईश्वराराधन के निर्गुण सगुण सभी रूप आ जाते हैं। ईश्वराराधना के द्वारा उसके मंगलमय विधान के लिये कृतज्ञता प्रकाशन और आध्यात्मिक शांति के अतिरिक्त जीवन के प्रति आस्था, विश्वास और आशावाद बढ़ता है और लौकिक व्यवहार में भी शील, सामय और सद्भावना की वृद्धि होती है। पूजा अर्चना में एक शांत और सामयमय वातावरण उपस्थित हो जाता है। विचारों में निर्मलता आती है और देश के साहित्य और संस्कृति के ज्ञान में वृद्धि होती है। धर्म और साहित्य का चोली दामन का साथ है। एक का अनुशीलन दूसरे के ज्ञान वर्धन में सहायक होता है। धार्मिक उपचारों के साथ संगीत आदि कलाओं का भी अनुशीलन हो जाता है। सुरपुजन में वे पर्व और उत्सव भी आ जाते हैं जो धार्मिक जीवन के आवश्यक अंग हैं। इनका धार्मिक महत्व है ही किन्तु सामाजिक महत्व भी है। इनके द्वारा जीव में एक नये उत्साह का संचार होता है। और पारिवारिक जीवन में सद्भावना और एकध्वेता के भाव बढ़ते हैं। इन शुभ अवसरों पर लोग एक दूसरे की मंगलकामना करते हैं और उनके पारस्परिक व्यवहार में कोमलता आ जाती है।

मिष्ठान्नपानम्

आजकल मधुमेय की बढौतरी के कारण वैसे तो यह कुछ दुर्लभी ही है किन्तु मिष्ठान्न पान, सुदंर भोजन और उच्च स्तरीय जीवन का प्रतीक है। सफल गृहस्थ जीवन वैराग्यमय जीवन नहीं है वरन् जीवन की शक्तियों का स्वस्थ और सामयमय विकास है। मिष्ठान के साथ एक विशेष मांगलिकता भी भाव लगा रहता है।

साधो:संग

अतिथि पूजा में साधू समागम भी आकस्मिक रूप से हो जाता है। किन्तु आतिथ्य में सेवा भाव की मुख्यता है। साधो संग में सत्संग और आध्यात्मिक और मानसिक आदान-प्रदान के ऊपर बल है। गृहस्थ को भौतिक रूप से भी सम्पन्न होना वांछनीय है इसके लिए साधो संग आवश्यक है।

उपासना

जो बात सुर पूजन के लिए कही गई है वहीं उपासना पर भी लागू होती है। सुर पूजन में रीति-रिवाजों और बाह्योपचार भी शामिल रहते हैं। इसमें वैयक्तिक और सामूहिक उपासनाएँ दोनों ही आजाती हैं। इनसे व्यक्तियों में शील और विनय के भावों का संचार होता है और व्यवहार में कोमलता आती है। जगत की मूल आधार स्वरूप परात्पर सत्ता के प्रति कृतज्ञता और विनम्रता के भावों को पोषण मिलता है। इसमें आत्मशुद्धि होती है और चित्त को शक्ति मिलती है। उपासना में ईश्वर सामीक्षा की ओर लक्ष्य रहता है जो पवित्र जीवन को ओर ले जाता है।

यह है प्राचीन काल में पारिवारिक जीवन का चित्र जो कि थोड़े बहुत हेर-फेर के साथ आजकल के जीवन पर लागू होता है। भारतीय आदर्श कोर वैराग्य का नहीं है वरन् धर्म, अर्थ, काम के साथ संपन्न जीवन का है। त्याग के साथ भोग भारतीय जीवन का समन्वयवादी आदर्श है।

राजनैतिक

गणतन्त्र-दिवस का शिव-संकल्प

राष्ट्र के जन जीवन में उल्लास लाने के कारण वैसे तो सभी पर्व राष्ट्रीय हैं, किंतु दो पर्व विशेष रूप से राष्ट्रीय माने जाते हैं, क्योंकि उनका राष्ट्र से सीधा संबंध है, वे हैं 15 अगस्त का स्वतंत्रता दिवस और 26 जनवरी का गणतंत्र दिवस। तीसरा राष्ट्रीय पर्व है महात्मा गांधी का जन्म दिवस दो अक्टूबर किंतु उसका विश्व के लिए महत्व है।

15 अगस्त, सन् 1947 की उदय बेला में भारत का भाग्योदय हुआ और हमारी दासता की बेड़ियां कटी थीं, उसी दिन दिल्ली के ऐतिहासिक लाल किले पर 'विश्व विजयी प्यारा' तिरंगा झंडा फराये जाने का चिर संचित स्वप्न चारितार्थ हुआ था। किंतु उस दिन की स्वतंत्रता बंधनों का निषेध मात्र थी। राष्ट्र का स्वरूप अनिश्चित और धूमिल था। उस दिन राष्ट्र कविवर मैथिलीशरण गुप्त द्वारा एक और प्रसंग में कहे गए शब्द चरितार्थ होते थे- 'दिन का आना ही नहीं हुआ रात का जाना समझो।' 15 अगस्त सन् 189 को ब्रिटिश- शासन की कालरात्रि समाप्त हुई। स्वतंत्रता का असली सूर्योदय तब हुआ जब 26 जनवरी 1950 को हमारा संविधान बन कर तैयार हुआ और हमने अपने राष्ट्र को पूर्ण प्रभुसत्ता-सम्पन्न घोषित किया। उसी दिन लाहौर कांग्रेस की प्रतिज्ञा पूर्ण हुई।

हमारा संविधान हमारी अनेकता में एकतामयी प्रभुसत्ता का प्रतीक है। इसमें सब न्यायप्रिय नागरिकों को बिना किसी जाति-पाति, रंग और समुदाय- भेद के अभयदान, स्वतंत्रता और समान अधिकारों की घोषणा है। सबको अविरोध भाव से अपनी अपनी संस्कृति के अनुकूल जीवन यापन करने की सुविधायें मिली हैं। इसी संविधान में हमारी भावी उन्नति के अंकुर निहित हैं। उनको पुष्ट और बलिष्ठ बनाना हमारा काम है।

संविधान में घोषित प्रभुसत्ता-संपन्न स्वतंत्रता की भावना को दृढ़ एवं पुष्ट बनाने के लिए प्रति वर्ष हम 26 जनवरी के पावन पर्व को मनाते हैं। उस दिन हम राष्ट्र की सांगोपांग रूप में झाँकी लेकर अपने संकल्पों की पुनरावृत्ति करते हैं।

उसी दिन राष्ट्र की एकता की प्रतीक महामहिम राष्ट्रपति की सजधज के साथ सवारी निकलती है। उसमें प्रांतों की झांकियाँ राष्ट्रगीत में वर्णित 'पंजाब सिंधु गुजरात मराठा द्राविड़ उत्कल बंगा' की विविधतामयी एकता का मनोरम दृश्य साकार रूप में उपस्थित कर देती हैं। भिन्न-भिन्न सैनिक विभागों के दस्ते हमको अपनी सुरक्षा में और भौतिक शक्ति में आत्म-विश्वास दिलाती है। इस दिन का विशाल सागर की भांति उमड़ता लहराता जन-समूह हमारी भावना को दृढ़ करता है।

इस धूम-धाम और साज-सज्जा एवं वाद्यनाद को कुछ लोग चाहे खोखला वैभव-प्रदर्शन कहलें, किंतु हमको यह न भूलना चाहिए कि प्रदर्शन का भी बड़ा मनोवैज्ञानिक मूल्य होता है। बाहरी सजधज उन्नति और नवनिर्माण के लिए स्फूर्ति उत्पन्न करता है। यह स्फूर्ति और प्रेरणा संक्रामक होती है। एक स्थान पर लाखों नागरिकों का एक ही भाव से आंदोलित हो एकत्रित होना राष्ट्रीय एकता को पुष्ट करता है। यदि वातावरण का मन पर प्रभाव पड़ता है तो धूम-धाम और साज-सज्जा का भी प्रेरणात्मक महत्व है।

यह मानते हुए भी कि हमारी वर्तमान स्थिति संतोषजनक नहीं और उसमें अभाव और न्यूनतायें हैं, हमको ह्वास और उदासीनता की मनोवृत्ति से बचना चाहिए। अभावों को वास्तविक और बढ़े-चढ़े रूप में देखते हुए हमको अपनी उपलब्धियों पर न ध्यान देना कार्यकर्ताओं के उत्साह पर पानी फेरना है। देश की विशालता को देखते हुए उसके अनुपात में हमारी समस्याओं का विशाल होना कोई आश्चर्यजनक नहीं, यह कह कर हम अपने अभावों और कठिनाईयों की उपेक्षा नहीं करना चाहते हैं, किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि हम अपनी कठिन तपस्या से जीती हुई स्वतंत्रता और स्वाभिमान पर हर्षोल्लास न प्रकट करें। स्वतंत्र देश का स्वाभिमान भी अपना विशेष महापुरुष के प्रति कृतधृता होगी जिनके सत्प्रयत्नों ने हमको स्वतंत्रता के दर्शन कराये।

आज के दिन हम हर्षोल्लास अवश्य मनावें, क्योंकि देश के स्वाभिमान की चेतना अपना मूल्य रखती है, किंतु उस चेतना की पुष्टि करने के लिए देश में मानसिक साम्य, भौतिक शक्ति और आर्थिक समृद्धि एवं कलामय संपन्न की स्थिति लाने और बनाये रखने के लिए योग देना हमारा पुनीत कर्तव्य है। मानसिक साम्य के लिए अनेकता में एकता का भाव और एकध्येयता का बोध आवश्यक है। हम यह समझें कि हम एक राष्ट्र के अंग हैं और अंगी अंग से बड़ा होता है। अंगी के पुष्टि और समृद्धि में अंग की भी पुष्टि और समृद्धि है। देश, व्यक्ति, पार्टी और प्रांत का अंगांगी संबंध है, इनकी साम्यमयी स्थिति में ही अंगी की पुष्टि और शक्ति निहित

है। 'संघे शक्ति कलौ युगे' अपनी छोटी-छोटी इकाइयों की स्वतंत्रता बनाये रखते हुए भी हमको इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि हमारी किसी कार्य से संघ की शक्ति में बाधा न पड़े और हमारी वृहद् इकाइयों की विशालता अक्षुण्ण रहे। हम छोटी-छोटी इकाइयों में बंट कर विशालता का गौरव खो बैठेंगे। एक विशाल इकाई के बराबर के अंग होने के गौरव को हमें न भूलना चाहिए। हमारे संविधान से संपन्न और शक्ति को बढ़ाना सबका पुनीत कर्तव्य है। अंगों की पुष्टि और समृद्धि में अंग की भी समृद्ध है।

आजकल देश में विघटन के तत्व बहुत बढ़ते जा रहे हैं। व्यक्ति पार्टी और संप्रदाय व प्रान्त ये सब किसी न किसी कार्य में विघटनकारी तत्व हैं। एक सीमा के भीतर रह कर यह शासन को संगठित इकाइयाँ देते हैं, किंतु सीमा के बाहर होने पर ये सब स्वतंत्रता के नाम पर पार्थक्य को पोषण देते हैं। छोटी इकाइयों की स्वतंत्रता वहीं तक मान्य और स्वागत योग्य है जहां तक वह पारस्परिक योग में बाधक न हो और वृहद् इकाई की शक्ति को कम न करे। यदि आपसी झगड़े में देश की शक्ति का ह्रास हो गया तो उन छोटी इकाइयों की शक्ति का अस्तित्व खतरे में आ जाएगा। पार्टियों में भी अब गुट बन गये हैं जो प्रायः व्यक्ति केंद्रित होते हैं। गुटों की परस्परिक फूट पार्टी के लिए घातक है और पार्टी की शक्ति कम होने से देश की संपन्नता में कमी आती है। देश पार्टी, व्यक्ति और गुट सबसे बड़ा है। उसकी रक्षा और समृद्धि में सबकी रक्षा और समृद्धि है। आज के पावन पर्व में हम देश-हित को सर्वोपरि समझने का व्रत लें। हम कोई काम ऐसा न करें जिससे देश के विघटनकारी तत्वों को पोषण मिले और देश की शक्ति कम हो जाए। हम अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए प्रयत्नशील रहते हुए भी देश की स्वतंत्रता की जी-जान से रक्षा करें। हम विकेंद्रीकरण की ओर जायें किंतु इतना नहीं कि केंद्रीकरण को भुला दें और बेरस्सी के लकड़ी के गट्टों की भांति बिखर जायें।

हम स्वतंत्र देश के नागरिक होने का गर्व तभी सार्थक कर सकेंगे जब हम आपस की फूट और वैमनस्य को बचाकर देश की समृद्धि, संपन्नता एवं सुरक्षा में प्राणप्रण से योग दें। देश की स्वतंत्रता के लिए हमको अपनी अवाधित स्वतंत्रता पर नियंत्रण करना होगा। स्वतंत्र देश के नागरिकों की भांति हम अनुशासन में रहना सीखें। अपने चुने हुए नेता की बात का आदर करें, विपक्ष की बात को सावधानी से सुनने को तैयार रहें और देश के हित को पार्टी, जाति, संप्रदाय और व्यक्तित्व के हित की अपेक्षा अधिक महत्व दें।

'सबको सन्मति दे भगवान्'

[सप्ताहिक मनु, २६ जनवरी १९६१]

नव-युग का साहित्यकार क्या लिखे ?

साहित्य बोलता हुआ जीवन का चित्र-पट ही नहीं, वरन् उसकी गति-विधि का नियन्ता भी है। साहित्य जीवन से प्रभावित ही नहीं होता है, वरन् उसे प्रभावित भी करता है। साहित्य में जातीय जीवन की ज्ञानेन्द्रियाँ, मस्तिष्क और वाणी केंद्रित रहती हैं। उसकी वाणी में जातीय जीवन और चिंतन-धारा का स्पंदन सुनाई पड़ता है। जाति उसके मुख से बोलती ही नहीं है वरन् वह जाति ही गतिविधि को समझकर उसका दिशा-निर्देश भी करता है।

साधारण लोगों की अपेक्षा साहित्यकार की संवेदन शक्ति और अभिव्यक्ति दोनों ही बढ़ी-चढ़ी होती हैं। इसलिए उसमें जनता का प्रतिनिधित्व करने की अधिक क्षमता रहती है। वह केवल प्रतिनिधित्व ही नहीं करता वरन् यदि वह स्वयं नेतृत्व नहीं करता तो देश के नेताओं और विचारकों को प्रभावित करता है। आजकल दुनिया की गति-विधि का नियंत्रण विचार करते हैं। विचारों का नियंत्रण साहित्यकार करता है, इसलिए साहित्यकार का उत्तरदायित्व महान् है।

साहित्यकार, विशेषकर राष्ट्रभाषा हिन्दी के साहित्यकार अपने इस राष्ट्र निर्माणकारी उत्तरदायित्व को समझें और समुचित एवं निष्पक्ष निरीक्षण और गंभीर अध्ययन और चिंतन से अपने देश हित में योग देने के योग्य बनावें।

साहित्यकार का सबसे पहला कर्तव्य देश के प्रति है। देश के अन्न-जल से उसका भौतिक निर्माण हुआ है। और उसकी संस्थाओं ने, जिनमें परिवार और शिक्षा केंद्र आदि सम्मिलित हैं, उसके मानसिक निर्माण में योग दिया है। देश के ऋण से उन्नत होना कठिन है। इसके अतिरिक्त देश और व्यक्ति का अंगांगी-संबंध है। देश की सुरक्षा, पुष्टि और समृद्धि में व्यक्ति और पार्टी की सुरक्षा, पुष्टि और समृद्धि है।

मानवता और विश्व-शांति के प्रति साहित्यकार का सामान्य उत्तरदायित्व तो है ही। साहित्य का भाव निहित है। साहित्य के दो अर्थ हैं- एकत्रित होना, एकट्ठा होना। दोनों में निर्माण और हित साधन साहित्यकार का कर्तव्य हो जात है।

साहित्यकार जोड़ने आता है, तोड़ने नहीं। वह शांति का दूत होता है। किंतु इसके अतिरिक्त उसका देश के प्रति विशेष कर्तव्य है। उससे अपेक्षा की जाती है, कि वह देश में रामराज्य स्थापित होने में योग दे। राम राज्य की दो विशेषताएं थीं- एक पूर्णाति- पूर्ण मानसिक साम्य और दूसरी पूर्ण भौतिक समृद्धि साहित्यकार का मुख्य काम है मानव संबंधों में साम्यमयी स्थिति लाना इस अर्थ से वह मानव भावों की व्यवस्था करता है और उनके उच्च से उच्च उदाहरण उपस्थित करता है। रामचरित मानस की महत्ता इस बात में है कि उसने ईश्वर भक्ति और धर्म-भावना के साथ पारिवारिक जीवन का एक उच्च साम्य आदर्श सामने रखा है। साहित्यकार मानव संबंधों के परिमार्जन के लिए काव्य लिखे। इसलिए नहीं कि भावों के मानसिक विश्लेषण मात्र। में कोई जादू है, वरन् इसलिए कि मानव-मानव के पारस्परिक संबंध सुधरें, जिससे देश में और देश के बाहर वह साम्यमयी स्थिति स्थापित हो जो शांति के लिए आवश्यक है। देश की समृद्धि तभी संभव हो सकती है, जब देश में और देश के बाहर भी वह साम्यमयी स्थिति स्थापित हो जो शांति के लिए आवश्यक है देश की समृद्धि तभी संभव हो सकती है जब देश में अनेकता में एकता के स्वर साम्य की स्थिति हो। **जहां समृद्धि तहां संपत्ति नाना** देश में साम्य की स्थिति लाने के लिए सम्प्रदायों, दलों और गुटों में समझौता कराना साहित्यकार का पुनित कार्य है। भाड़काना, उत्तेजना पैदा करना और आपसी लड़ाई को बढ़ावा देना साहित्यकार के लिए घोर पाप है।

इस सब का अभिप्राय यह नहीं है कि साहित्यकार स्वतंत्र मत न रखें या आलोचना न करें वह आलोचना करें और आवश्यक करें किंतु साहित्यकार की भांति सहृदयता और शालिनता के साथ। शालीनता साहित्यकार का मुख्य लक्षण है। वह आलोचना में कटुता और तिरस्कार की भावना को न आने दें। वह दूसरों की असफलताओं पर प्रसन्न न हों और न गर्वोल्लास का अनुभव करें। नहीं तो वह अशांति फैलाने का स्वयं दोषी हो जायगा। देश के उन्नायकों प्रति घृणा या तिरस्कार की भावना पैदा करना अनुशासनहीनता उत्पन्न करता है यदि यथार्थवाद के नाम पर साहित्यकार दोष दर्शन को ही अपना ध्येय बना लें तो नवयुकों के मन से देश के प्रति गर्व की भावना उठ जायेगी। साहित्यकार को न्याय का पल्ला नहीं छोड़ना चाहिए। अभावों, न्यूनताओं और असफलताओं के साथ उपलब्धियों और मार्ग की कठिनाईयों का भी ध्यान रखना चाहिए उनकी उपेक्षा करना अन्याय होगा।

देश समृद्धि के लिए साहित्यकार को ज्ञान-विज्ञान के ठोस विचारों का प्रचार

करना चाहिए जिससे देश का गौरव बढ़े और जनता का मानसिक स्तर ऊंचा हो और वे देश के समृद्धि में योग दे सकें। देश की समृद्धि और सुरक्षा में योग देने के लिए साहित्यकार को ऐसी रचना करना आवश्यक है जिससे देश और व्यक्ति के तादात्म्य की भावना बढ़े, जिससे व्यक्ति देश हित में अपना हित समझे और कोई ऐसा काम न करे, जिससे देश का सिर नीचा हो। देश के प्रति गर्व की भावना उत्पन्न करना साहित्यकार का पुनीत कर्तव्य है। स्वतंत्रता के साथ देश पर जो नये उत्तरदायित्व आये हैं, देश की समृद्धि के लिए जो विशालकाय योजनाएं चल रही हैं उनकी उचित चर्चा करना भी साहित्यकार का कर्तव्य है। काम करने वालों की उपेक्षा करना उनके उत्साह पर पानी फेरना है।

संक्षेप में नवयुग के साहित्यकार को ऐसा साहित्य सृजन करना चाहिए:-

1. जिससे मानव संबंधों और व्यापारों की जानकारी बढ़े और साम्य की स्थिति पैदा हो। साहित्यकार अन्याय शोषण की ओर ध्यान आकर्षित कर उसको दूर करने का प्रयत्न करे।

२ जिससे देश में मानसिक, भौतिक और नैतिक संपन्नता बढ़े।

३ जिससे देश के प्रति गर्व की भावना बढ़े।

४ जिससे विश्व में सुख, शांति और सद्भावना की वृद्धि हो और सत्य और अहिंसा का साम्राज्य स्थापित हो।

सर्वे भवंतु सुखिनः

सर्वे संतु निर्मयः ।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु

माकश्चिदुःख भाग्मवेत् ॥

ब्रिटिश शासन के वे दिन

भरतेन्दु हरिश्चन्द्र ने लिखा था-

अंग्रेज राज सुख-साज सजे सब भारी।

पै धन विदेस चलि जात यहै अति ख्वारी ॥

‘धन विदेस चलि जात’ की बात तो थी ही किन्तु अंग्रेजी राज के आंतकवाद के कारण जाति के स्वाभिमान, साहस, उत्साह और उससे उत्पन्न होने वाली स्फूर्ति को जो क्षति पहुंचती थी वह अर्थ-हानि से भी कहीं अधिक थी।

अंग्रेज भय की प्रीति में विश्वास करते थे। उन्होंने अपने राज्य को अटल बनाने के लिए आत्मश्रेष्ठता का एक आभा चक्र सा बना रखा था, जिससे वे लोगों को आंतकित कर सकें। उन्होंने शासन के जन्मजात एवं ईश्वरदत्त अधिकार का माया जाल फैला रखा था और अपनी एक पृथक जाति सी बना रखी थी। जाति पांति में विश्वास न करते हुये भी वे श्वेत जातियों द्वारा श्यामवर्ण लोगों के उद्धार के उत्तरदायित्व का प्रचार करते थे। इस आभा चक्र को बनाए रखने के लिए वे आर्य-सामाजियों की अपेक्षा सनातन धर्मी पंडितों को अधिक पृष्ठ-पोषण करते थे। कुछ सनातन धर्मी पंडित भी श्रीमद्भगवद्गीता द्वारा प्रतिपादित ‘नराणां नराधिपः’ की बात कहकर राजभक्ति का प्रचार करते हैं और यह भूल जाते थे कि उस समय राम और युधिष्ठिर सरीखे प्रजावत्सल राजा होते थे और उनमें प्रजा की कल्याण कामना पहले रहती थी।

स्वास्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्ताम्।

न्यायेन मार्गेण महीः महिषाः ॥

सनातन धर्मसभाओं तथा अन्य धार्मिक सभाओं में और शायद कांग्रेस के प्रारम्भिक काल में भी न्यायप्रिय ब्रिटिश सरकार को धन्यवाद देने और राजभक्ति प्रकट करने का प्रस्ताव आवश्यक रूप से पास किया जाता था। अंग्रेजी राज्य की प्रशंसा में वे यह कहते न थकते कि इसमें सूर्य अस्त नहीं होता और शेर बकरी एक ही घाट पर पानी पीते हैं। जब हिन्दू मुस्लिमानों का सहआस्तित्व कायम न रह सका तो शेर-बकरी के एक घाट पानी पीने की बात सरकारों में ही चरितार्थ होती थी।

अंग्रेज जानते थे कि जहां धर्म और जातिवाद का चक्रव्यूह टूटा, वहां उनकी भी जातिया श्रेष्ठता गई। अंग्रेज जातिवाद के ही शोषक न थे, वरन् सम्पद्रायवाद के भी समर्थक थे, क्योंकि वह उनकी भेद नीति के अनुकूल पडता था। हिन्दू मुस्लिम झगड़ों से उनके शासन की जड़ें पुष्ट होती थी। ईसाई धर्म को राजधर्म का-सा पोषण मिलता था। ईसाई बिशप, जो प्रायः गौरांग हुआ करते थे सरकारी खजाने से वेतन पाते थे। उनकी तनखाह सुरक्षित थी।

हिन्दूस्तानियों के अंग्रेजी वेशभूषा और खानपान के वे अधिक पक्ष में न थे, क्योंकि वे जानते थे कि अंग्रेजी पोशाक पहनने वाले और अंग्रेजी खाना खाने वाले लोग बराबरी का दावा करने लगते हैं वे एक मनोवैज्ञानिक दूरी रखना चाहते थे। वे हमारे उत्सवों में तो शामिल होते ही नहीं थे अपने उत्सवों में भी 'वयम् वयम्' यूमं यूयम् का सम्बन्ध रखते थे। उनका सम्बन्ध बरामदे में आकर सलाम और डाली स्वीकार करने तक ही सीमित रहता था। शेकहेन्ड भी वे विशेष कृपा-पात्रों से ही करते थे। हिन्दुस्तानियों का चाहे वे इंग्लैंड रिटर्न्ड भी क्यों न हो, अंग्रेजों के क्लबों और डिनरों में मुश्किल से ही प्रवेश होता था। विलायत से लौटे हुये हिन्दुस्तानियों, जो वहां उच्च कुलीन समाज में घुलमिल चुके थे, यह दूरी अखरती थी। अगर कोई अंग्रेजों की बिरादरी में शामिल हो सकते थे तो वे राजा महाराजा वर्ग के लोग (और कुछ सीमा के भीतर उनके दीवान और सेक्रेटरी भी थे।)

अंग्रेज स्वदेशी कपड़े के पक्ष में न होते हुये भी स्वदेशी ढंग की पोशाक के समर्थक थे। वे चूड़ीदार पायजामा पेटेन्ट लैंडर का पम्पशु पहनेह हुये अचकन चोगा और साफा से सुज्जित तथा झुककर सलाम करने वाले राय साहबों से अधिक प्रसन्न रहते थे। राय साहब लोग भी उनके एक एक वाक्य को वेद वाक्य से भी अधिक महत्व देते थे। वे उनकी औपचारिक धन्यवाद की चिट को भी अपनी अमूल्य निधि समझते थे। रायसाहब लोग भी दो प्रकार के होते थे। कुछ लोग तो अंग्रेजों की खुशामद मात्र से संतुष्ट रहते थे और किसी की बुराई भलाई से सरोकार नहीं रखते थे। दूसरे वे लोग थे जो खुशामद के साथ दूसरों की बुराई पर पनपते थे। वे अंग्रेजों के दमनचक्रं में भी सहायक होते थे। लोग उनको घृणा की दृष्टि से देखते थे लेकिन उनको इनकी परवाह नहीं थी।

जनसाधारण भी अंग्रेजों के हितों से तादात्म्य स्थापित रखने में अपनी कुशल समझते थे। अंग्रेजों के सुख में सुख का और उनके दुख में दुख का अनुभव करना नहीं तो कम से कम उसका दिखावा करना अपना पुनीत धर्म समझते थे। अंग्रेज सम्राटों के निधन पर गहरा शोक मनाया जाता था। सरकारी नौकर और अन्य लोग भी बांह पर काले बिल्ले धारण करते थे। सम्राट एडवर्ड सप्तम के देहावासन पर कुछ

पंडित लोग उनको तिलांजलि अर्पित करने जमुना जी पंहुचे थे। अंग्रेजों के शत्रु अपने शत्रु होते थे और उनके मित्र अपने देश के मित्र गिने जाते थे। युद्ध के दिनों में राजा महाराजाओं के खजाने और सेना का साज समान और सैनिक सब ब्रिटिश सेना के लाभार्थ सुरक्षित कर दिये जाते थे। अन्य लोग रंगरूट देखकर या स्वयं फौज में भर्ती होकर धन से तथा मन से भी कवितादि लिखकर और कुछ नहीं तो 'वी' प्रतिक को अपना कर युद्ध में सहयोग देते थे। सेठ साहुकार राय बहादुरी या राजा का पद पाने के लिये अपने को भामाशाह के वंशज प्रमाणित करने को लालायित रहते थे।

सरकारी नौकर तो अंग्रेजों के क्रीत दास थे। उनका जीवन मरन अंग्रेज प्रभुओं के हाथ में था। अगर वे सरकारी काम काज के अतिरिक्त अपने बाबू के बाल बच्चों की कुशल पूछ लेते तो मानो स्वर्ग मिल जाता। जो लोग बराबरी का दावा नहीं करते थे उनसे अंग्रेज बहुत खुश रहते थे। उनका थोड़ा बहुत उपकार भी कर देते थे। सरकारी कामकाज के अतिरिक्त बाबू लोगों तथा अफसरों को भी सरकार की सुख सुविधा का ध्यान रखना पड़ता था। सरकार के विरुद्ध आंदोलनों में भाग लेने वाले नजदीकी रिश्तेदारों से भी पत्र व्यवहार करने में संकोच होता था। यदि कोई भूतलवासी राजनीतिक मेहमान के रूप में आ जाता तो धर्म संकट पड़ जाता। सरकार राजभक्ति की सी अनन्यता चाहती थी। 'जाके प्रिय न राम वैदेही, सो तजिये कोटि वैरी सम जदपि परम सनेही' राजनीतिक बंदियों से जेल में मिलने जाने वाले लोगों के नाम तुरंत ही सी आई डी के दफ्तर में नोट हो जाते। इस भय के कारण इच्छा रखते हुये भी मैं श्री मैथिलीशरण गुप्त से मिलने आगरा जेल में जाने का साहस न कर सका। सरकारी नौकर तो किसी से मिलने का स्वप्न भी नहीं देख सकते। सरकारी लोग, विशेषकर डिप्टी कल्क्टर लोग तथा पुलिस अधिकारी, अंग्रेजों के दमनचक्र चलाने में अपने प्रभुओं से चार कदम आगे रहते थे। सरकारी नौकरों, पदवीधारियों और राजा महाराजाओं के सक्रिय सहयोग पर भी अंग्रेजी राज चलता था। इसलिए हमारे नेताओं ने असहयोग पर बल दिया और इसलिए महात्मा गांधी ने सरल जीवन का पाठ पढाया।

अंग्रेजों के यहां सरकारी नौकरों की कोई सामाजिक स्थिति न थी। साहब के कमरे में प्रायः जूता उतार कर जाना पड़ता था और खड़े ही खड़े आदेश लेने पड़ते थे। घर पर क्रिसमिस की मुलाकात पर भी ड्राईंग रूम में प्रवेश नहीं मिलता था। ईसाई धर्मोपदेशक अंग्रेजों का व्यवहार स्वार्थवश कुछ अच्छा था। पोलिटिकल अफसर राजा महाराजाओं तथा उनके सरदारों के साथ कुछ अच्छा व्यवहार करते थे। वह केवल दिखावा था।

विद्यार्थियों में अवश्य कुछ स्वतंत्रता के भाव थे। 'वीर विहिन मही मैं जानी

की बात थी। वकील लोग और कुछ अध्यापक भी स्वतंत्रता की मशाल जलाए रखते थे। किन्तु सरकारी और अर्द्धसरकारी संस्थाओं के विद्यार्थियों और अध्यापकों के स्वतंत्रता के भाव विधिवत दबाए जाते थे। कालेज के प्रिंसीपल जो प्रायः गौरांग हुआ करते थे पुलिस सुपरिण्टेण्डेंट से भी अधिक सतर्क रहते थे। प्रति रविवार को होस्टलों का निरीक्षण होता था। विद्यार्थियों को साफ़ा बांधे सुसज्जित खड़ा करना पड़ता था। अन्य सब नेशनल बातों के विरुद्ध होते भी नेशनल हैड ड्रेस को प्रोत्साहन दिया जाता था, क्योंकि वह अदब और स्वामीभक्ति की परिचायक थी। प्रिंसीपल की भेदक दृष्टि लड़कों की मेज पर रखी हुई किताबों पर होती थी। यद्यपि आपत्तिजनक साहित्य पहले से ही छिपा दिया जाता था। फिर भी कभी न कभी कुछ आपत्ति योग्य सामग्री मिल ही जाती थी। नेताओं के चित्र भी आपत्तिजनक समझे जाते थे। अगर ये हटाए न जाते थे तो उस विद्यार्थी पर अधिकारियों की शनि दृष्टि रहती थी। आपत्तिजनक पुस्तक मिल जाने पर अधिकारियों के व्यंग्य वाक्य सुनने के अतिरिक्त पुस्तक से भी हाथ धोना पड़ता था। उच्च नौकरियों के आंकाक्षी प्रिंसीपल की खुशामद में लगे रहते थे, क्योंकि उच्च पदों पर नियुक्ति प्रिंसीपल की सिफारिश पर होती थी। लड़कों में कुछ सीआईडी का भी काम करते थे। वह सहज में प्रिंसीपल का कृपा पात्र बन जाते थे।

पहले महायुद्ध में आगरे के प्राय सभी होस्टलों के यूनियनों की ओर से राजभक्ति के प्रस्ताव भेजे गये थे। वैश्व हाऊस के कुछ विद्यार्थी, जिनमें मैं भी था, वैश्व हाऊस से ऐसे प्रस्ताव भेजे जाने के विरुद्ध थे। वैश्य महासभा के उच्चतम सत्ताधारी एक सज्जन, जिन्होंने भारतेदु हरिश्चन्द्र की भांति राजभक्ति को देशभक्ति का सुलभ साधन बना रखा था और जिनकी सदाशयता में शंका उठाने के पूर्व 'शान्तं पापं' कहकर प्रायश्चित करना होगा, (वह कांग्रेस सरकार में एक उच्च पद को सुशोभित कर चुके हैं।) बोर्डिंग हाऊस आये और हम राजद्रोही लड़कों को कुछ प्रेम पूर्वक और कुछ भय प्रदर्शन कर समझाया और प्रस्ताव करा कर अधिकारियों के पास भेज दिया।

विद्यार्थियों और प्राध्यापकों को वैज्ञानिक अनुसंधान के लिये कोई प्रोत्साहन न था। उच्च प्रकार का चिंतन कार्य अंग्रेजों के हाथों में ही था। विद्यार्थियों के लिए फौज और नोसेना के उच्च पदों के मार्ग बंद थे। असैनिक नौकरियों में उंचा उठना मुश्किल था। उसके लिए अंग्रेजों की खुशामद पासपोर्ट आवश्यक था। योग्यता काम अवश्य देती थी, किन्तु कोई योग्यता निष्फल रहती थी। विद्यार्थियों के प्रेरणा स्रोत क्षीणकाय हो रहे थे। राजनीतिक सभाओं में जाना निषेध था। हरि-गुरु निंदा के समान अंग्रेज-निंदा सुनने में 'पाप होई गौ घात समाना।' की बात थी।

देशी राज्यों की स्थिति भी स्पृहणीय न थी। वे लोग रेजीडेंट तथा पोलिटिकल एजेन्ट के भय से आंतकित रहते थे। उनके चपरासी भी रियासत के अफसरों पर रौब गांठते थे। सेंट्रल इंडिया एंजेसी इंदौर के ऐजीजी के हैड अर्दली के पास कई कोठियां थी। वे राजा महाराजा के इनाम इकराम से बनी थी। राजा महाराज लोग अपनी विलासिता और अनुत्तरदायी शासन को (**ऐसी बात न थी कि उनमें गुण न थे, वे कला कौशल के पोषक थे और कभी-कभी उनके हाथों न्याय भी शीघ्रता से हो जाता था**) कायम रखने के लिए अंग्रेजों की हर तरह की खातिरदारी और बेगार करते थे। पोलिटिकल अफसर प्राय सुशिक्षित और सुसंस्कृत हुआ करते थे। व्यवहार की औपचारिक शिष्टता और मधुरता उनकी विशेषता थी। किन्तु वे मतलब के चौकस होते थे। किसी राजा को पदच्युत करने के लिए भी वे मित्र कहकर सम्बोधित करते थे। साधारणतया: अंग्रेज पोलिटिकल आफिसर ईमानदार तो होता ही था किन्तु मोटरों, तांगों, शिकार और बारबरदारी की बेगार लेने में बहुत कुशल होता था और उसकी कमी उसके अफसर कर देते थे। मछलियों आदि की मुफ्त सप्लाई उनका नैतिक अधिकार समझा जाता था। औपचारिक अवसरों पर अवश्य और साधारण अवसरों पर भी कभी-कभी राजा महाराजा लोग पोलिटिकल अफसरों की अगवानी के लिये लाव लश्कर, सरदारों तथा विप्र-महाजन, सचिवों सहित निश्चित सीमा तक और प्राय उससे भी आगे जाते थे। निश्चित नियमों के अनुकूल जिनमें सब कार्य पद्धति निर्धारित रहती थी (**कौन कहां पर स्वागत करे इत्यादि**) दरबार होते थे। पोलिटिकल अफसरों को औपचारिक भाला और पुरानी चाल की बंदूक मित्रता कहिये या राजभक्ति स्वरूप भेंट की जाती थी। तश्तरियों में कपड़े सामने रखे जाते थे। राजा महाराजा तो नहीं उनके सरदार अफसरों के कर कमलों के स्पर्श के लिये अशर्फियां दिखाते थे। वह हम स्वतंत्र प्रकृति के लोगों को बहुत बुरा लगता था, किन्तु विवश थे। लार्ड कर्जन के दरबार में राजा महाराजाओ को पूरे राजसी ठाट बाठ के साथ उनकी सवारी के पीछे चलना पड़ता था। मंच पर बैठे हुये लाट साहब को सलाम करने जाना पड़ता था। सम्राट को पीठ दिखाकर लौटने पर महाराजा बडौदा को अपने व्यवहार की व्याख्या करनी पड़ी थी। राजकुमारों ने लाट साहब की गाऊन के छोर उठाकर चलने और उनके 'पेज' कहलाने में गौरव समझता था।

उन दिनों राजभक्ति में ही त्राण था। जो राजा महाराजा राजभक्त थे, उनको अभ्यदान मिला हुआ था और जो अक्खड़ टाईप के थे, जैसे महाराजा बडौदा, इंदौर और अलवर नरेश आदि, उनको स्वास्थ्य सुधार के लिये इंग्लैंड, स्विजरलैंड या पैरिस जाने का सत्परामर्श दिया जाता था। जिनकाफिजूल खर्ची में कोष खाली जाता

था, उनको यह गति शीघ्र मिल जाती थी। अंग्रेजों को शासन सुधार का बहाना मिल जाता था। जो लोग धार्मिक प्रवृत्ति के थे उन्हें काशी, अयोध्या या वृंदावन भेज दिया जाता था। हास-विलास और वैभव एश्वर्य के जीवन में दासता की कालिमा लगी हुई थी। अपनी प्रजा को उत्तरदायी शासन देकर भारत को एकरस बनाने में उन लोगों ने जिस त्याग और देश भक्ति का परिचय दिया है वह अत्यंत सराहनीय है। वे देशवासियों के आदर और धन्यवाद के पात्र हैं। अब उनकी प्रजा भी उनकी बराबरी की हकदार हो गई है। राजशक्ति और वैभव प्रजाजन में विकीर्ण हो गया है। इससे जाति में साहस, स्फूर्ति और समृद्धि एवं कार्यक्षमता बढ़ेगी।

वैयक्तिक

मेरी प्रवास भिरूता

आइन्सटाइन का सापेक्षतावाद केवल भौतिकी शास्त्र में लागू नहीं होता वरन् साधारण जीवन में भी उसके उदाहरण प्रचुरता से मिलते हैं। वैगन जहां एक को पथ्य होते हैं वहां दूसरे को बाय पैदा कर देते हैं। भिरूता जहां स्त्रियों में गुन मानी जाती हैं वहां पुरुषों में अक्षम्य दोष गिनी जाती है। हां! एक प्रकार की भिरूता पुरुषों में सराहनीय समझी जाती है। वह है धर्म भिरूता। धर्म के साथ भीरूता भी ऊंची उठ जाती है। सत्संगति की महिमा का इससे अच्छा कौन सा उदाहरण मिलेगा ?

आजकल के बहादुर नवयुवकों ने भीरूता का नामोनिशान मिटाने के लिए कम से कम धर्म के क्षेत्र से भीरूता को भगा दिया है। भागना तो भीरूता का स्वाभाविक धर्म है।

भीरूता कुछ जातिगत भी मानी जाती है। बेचारे बनिए लोग भीरूता के लिए बदनाम है 'कहा जाने वणिक पुत्र गढ़ लैबे की बात' किन्तु अब जाति-पांति के बन्धन शिथिल हो जाने के कारण गुणों और कार्यों के विभाजन में ढिलाव आ गया है। भारत के स्वतंत्रता संग्राम के प्रधान सेना नायक डेढ़ पसली के बनिये ही थे।

आजकल अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में वैश्य धर्म की प्रधानता होती जा रही है। क्षत्रिय धर्मावलम्बी विध्वंसक यन्त्रों के निर्माता राष्ट्रों के उन्नायक युद्ध से सन्यास लेने के लिए शिखर सम्मेलन की पुकार करते हैं। रक्तध्वज धारी लाल रूस इस पुकार में सबसे आगे है, कम से कम वाचा तो है ही, एक तिहाई अंकों पर तो लोग पास हो ही जाते हैं। शान्ति की उत्कट अभिलाषा और भीरूता की पार्थक्य रेखा बड़ी क्षीण है। हिंसात्मक नृशंस वीरता से भीरूता ही श्रेयस्कर मानी जाती है। धनुर्धारी दनुज संहारी श्री रामचन्द्र जी के अनन्य उपासक गोस्वामी तुलसीदास जी भी कहते हैं कि 'जूझिबेते भलि बूझिवो भली जीतितें हार।'

भीरूता की बिना पैसे की वकालत करना मेरा उद्देश्य नहीं। मैं एल० एल० बी० पास करके भी चौथ के चन्दा और पर नारि लिलार की भंति वकालत से

बचता रहा हूँ। असली बात यह है कि भीरूता का अस्तित्व न स्वीकार करना सबसे बड़ी नैतिक भीरूता है। भीरूता से भी क्या डरना ?

युद्ध की वीरता या भीरूता से मुझे कोई सरोकार नहीं। वह तो मेरे क्षेत्र के बाहर की बात है है। वैसे भी पर्वत श्रृंखलें की भांति 'युद्धस्य वार्ता दूरादेव रम्या।' ऐसा कहने पर मुझे कोई कायर कहे तो मैं दुनिया के शान्तिवादियों की दुहाई देने लग जाऊंगा। अस्तु, भीरूता दो प्रकार की होती है। एक उपस्थित भय से भागना और दूसरी अनुपस्थित भय की आंशका मात्र से भागना। पहले प्रकार की भीरूता वास्तविक भय की उपज है और दूसरी काल्पनिक भय की। काल्पनिक भय वास्तविक भय से अधिक अतिरंजित होता है क्योंकि उसमें कल्पना की रंगीनी लगी होती है। मुझ जैसे ठलुआ लोगों के मस्तिष्क में कल्पना देवी के नृत्य को विस्तृत मैदान मिल जाता है। फिर चाहे वास्तविकता में पहाड़ खोदकर चूहा ही क्यों न निकले। आफतें आती अवश्य हैं किन्तु सोची हुई दिशा से नहीं। वज्रपात प्रायः शून्य गगन से ही होता है।

यह जानते हुये भी कल्पना का खेल झूठा है, रोका नहीं जाता। मेरी प्रवास भीरूता भी प्रायः इसी प्रकार की है। जितना ही वार्द्धक्य बढ़ता जाता है उतनी ही पर निर्भरता में वृद्धि होती जाती है और रोगों से लड़ने के उपकरणों की संख्या बढ़ती जाती है। सन्यसा के स्थान में परिग्रह का बोलबाला हो जाता है। 'तीन बुलाये तेहर आये' की बात तो नहीं तीन और तेरह दोनों की संख्याएं अशुभ और वर्ज्य हैं। 'एक न शद दो शद' की बात चरितार्थ ही हो जाती है। आतिथेय करने वालों का भार कम से कम दूना हो जाता है। रेल का किराया और सामान भी विशेषकर जाड़ों में दूना हो जाता है। अर्द्धांगिनी का भी किराया पूरा ही देना होता है। सामान का भौतिक भार तो कुली को ही सम्हालना पड़ता है और कुली को पैसे देने की बात भी अधिक चिन्ताग्रस्त नहीं करती। चिन्ता होती है रेल की भीड़भाड़ में यह सामान सम्हालेगा कैसे? सैकेंड क्लास में आदमियों के लिए ही जगह नहीं रहती दिलों में अवश्य निकल आती है। तो सामान के लिए कहां से जगह आयेगी? मेरी गति उस जुलाहे की सी हो जाती है जो एक रूई का भरा जहाज देखकर धुन लगा रहा था कि इतनी रूई कौन धुनेगा? दूसरों को अपने लिए कष्ट उठाते देखना मुझे गवारा नहीं होता। खुद को कष्ट उठाने की सामर्थ्य नहीं। भौतिक भार तो दूर रहा मानसिक भार ही परेशान कर देता है।

फिर स्टेशन जाने की समस्या होती है। तांगा मंगाया जाय या रिक्शा। तांगे

पर चढ़ना जरा कष्ट साध्य होता है और सामान भरी रिक्शा में बैठना पसन्द नहीं करता। घर में टेलीफोन होते हुये भी टैक्सी सहज में प्राप्य नहीं होती। स्टेशन पर समय से पहले भी नहीं पहुंचना चाहता और ठीक समय पर पहुंचने के लिए न अपनी घड़ियों पर विश्वास होता है और न रेलवे वालों की घड़ियों का। घड़ी भी यदि ठीक हो तो तांगों रिक्शा आदि को स्टेशन पहुंचाने के समय में देर सवेर हो सकती है। यातायात के कारण रास्ता रूद्ध हो सकता है। राजामन्डी स्टेशन मेरे घर के निकट है घर से जाने में तो इस प्रकार की आशंकाएँ कम रहती हैं किन्तु गन्तव्य स्थान से लौटते समय तो ये आशंकाएँ मस्तिष्क को थोड़ा बहुत कष्ट प्रायः दे ही देती है। घर की कार भी हो तब भी यह आशंका निर्मूल नहीं होती। स्टेशन पर ठीक समय पहुंच जाने पर भी समस्या का अन्त नहीं हो जाता। फिर समस्या यह रहती है, कहीं पुल पर तो चढ़ना नहीं पड़ेगा? ब्लड प्रेशर के मरीज के लिए रेल का पुल पार करना भव सागर पार करने से कठिन होता है। पुल पार करके भी रेल के साथ डिब्बे के कितनी दूर भागना होगा, इसका भी अनुमान अनिश्चित सा रहता है।

इसके अतिरिक्त यह निश्चित नहीं होता कि टिकट की खिड़की पर कितनी देर लगेगी। सहालग, मेले दशहरे और छुट्टियों के आरम्भ और अंत में आशंकाएँ और भी बढ़ जाती हैं। सर्वोपरि गाड़ी में बैठने की समस्या होती है, राजामन्डी स्टेशन पर और सब सुविधाएँ होते हुए भी वहां रेल कम ठहरती है और केन्ट घरसे तीन मील दूर है। सैकिंड क्लास का प्रायः एकही डिब्बा होता है और उसमें प्रायः एक ही द्वार होता है जिसमें उतरना भी होता है और चढ़ना भी और फिर उसी में असवाव भी ठूंसना होता है। मुझे यही आश्चर्य होता है कि सब असवाव सही सलामत आ कैसे जाता है? फर्स्ट क्लास में मैं यात्रा करने की सामर्थ्य तो रखता हूँ किन्तु दो या तीन फर्स्ट क्लास टिकट लेना फिजूलखर्ची और विलासिता समझता हूँ। मैं अपने को इतना महत्वशाली नहीं समझता कि फर्स्ट क्लास में सफर करूँ। जब परीक्षा में भी कभी सैकेण्ड डिवीजन से अधिक नहीं लाया, जब जीवन में कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं किया वास्तव में मैंने कभी कोई महत्वपूर्ण काम नहीं किया क्योंकि जिस काम को मुझ जैसा मूर्ख कर लेता है वह महत्वपूर्ण नहीं रहता, कोई भी मूर्ख उसे कर सकता था। जब जीवन में मूर्धन्य स्थान न पा सका तब मूर्धन्य दर्जे की सुख सुविधाओं का क्या अधिकार ?

दिन की गाड़ी मे इसलिए नहीं चलना चाहता कि किसी नयी जगह शाम के बाद में नहीं पहुंचना चाहता और रात की गाड़ी में इसलिए बैठना नहीं चाहता कि

निद्रा देवी जब घर पर ही रूठी रहती है तो रेल में मेरे पास क्या वशीकरण मंत्र है जो उसको मना लूंगा। घर पर जब निद्रा रानी रूठजाती है तब नाना उपायों से उनका आवाहन किया जाता है। बाल्यकाल की 'आजा री निदरिया भोर कटेगी तेरी मूडरिया' का पाठ होता है। कभी 'शरणागत मांगत पाहि प्रभो' की पुकार होती है तो कभी तैल-मर्दन और कभी पद चाप। फिर थियोगार्डिनैल की गोली का ब्रह्मास्त्र काम में लाना पड़ता है। इतने सब उपचार रेल यात्रा में सुलभ नहीं। सुलभ भी हो तो दूसरों की निद्रा भंग किये बिना संभव नहीं।

दूसरी जगह पहुंचकर मैं खाने पीने की व्यवस्था और दिनचर्या घर की जैसा ही रखना चाहता हूँ, जो दूसरी जगह असंभव तो नहीं कष्ट साध्य अवश्य होती है। मुझ में अनुकूलन शक्ति आवश्यकता से कुछ कम है। वार्द्धक्य के कारण इस व्याधि मन्दिर शरीर में सदा यह भय लगा रहता है कि युद्धकालीन विस्फोटक की भांति कौन सी 'माइन' का विस्फोट हो जाये। अपरिचित स्थान में शरीर की प्रकृति से अपरिचित डाक्टरों के हाथ अपने को सौंपना पड़ेगा, यह भय तो लगा ही रहता है। फिर वे समय पर उपलब्ध हो सकेंगे या नहीं? उपलब्ध भी हो सकेंगे तो वे आगरे के डाक्टरों की भांति पीयूषपानी होंगे या नहीं। प्रायः इन्हीं कारणों से मैं घर से बाहर जाना नहीं चाहता? बाहर जाकर मैं घर की अपेक्षा अधिक उपयोगी भी नहीं बन सकता। सभा सोसाईटियों में घंटे दो घंटे बैठ नहीं सकता। भाषण देना मेरी सामर्थ्य से बाहर है। 'जैसे कन्ता घर रहे वैसे रहे विदेश' इसलिए बाहर के सज्जन निमन्त्रण देने का कष्ट न करें। यह लेख मैंने लिख दिया क्योंकि घर पर बैठकर कम से कम लिख तो सकता ही हूँ। लिखता इसलिए हूँ कि और कुछ कर नहीं सकता।

मेरा चौहत्तरवाँ जन्म दिवस

सियाराम मय सब जग जानी ।

करहुँ प्रणाम जोर जुग पानी ॥

इस अर्द्धांश में जितने आध्यात्मिक तत्व के साथ शील और विनय के भाव हैं उतने अन्यत्र दुर्लभ हैं, किन्तु मैं और मोर के स्वर्णमय आकर्षक और दुर्भेद्य मायाजाल में फंसे हुये जीव के लिए इस परम तत्व का साक्षात्कार करना उससे भी अधिक दुर्लभ है। जब 'रजौयथाहेर्भूमः' के प्रचारक भक्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपनी अनन्यता में राम और श्याम में अन्तर किया- 'तुलसी मस्तक तब नवै, जब धनुषबाण लेहु हाथ' तब 'अस्मादिकानां लौकिकानां का वार्ता।' मैं भी आगरे के प्रति अनन्यता निभाने बरेली में प्रियजन पुत्र पौत्र के होते हुए भी वहां से अपना जन्मदिन मनाने के लिए अपनी यात्रा भीरूता पर विजय पाकर कड़कड़ाते शीत में आगरा चला आया। वैसे तो दोनों ही पुण्य स्थान आगरा और बरेली कवियों के समकक्ष और हमजोली प्रिय सखा पागलों के आश्रय स्थान हैं (पागल शुद्ध संस्कृत शब्द है यह बात मैं पंडित हरिशंकरजी के कोषस्थ ज्ञान के आधार पर कह रहा हूं।) किन्तु व्यक्तित्व का अन्तर है। व्यक्तित्व के सम्बन्ध में हिन्दी साहित्य गगन के सूर्य महात्मा सूरदासजी ने विरहणी ब्रजांगनाओं से कहलाया है:-

द्वै लोचन जो विरूद किये, स्त्रुति गावत एक समान ।

भेद चकोर कियो तिनहूं मैं, विधु पीतम रिपु भान ॥

अर्थात् सूर्य और चन्द्रमा को वेद ने एक समान माना है किन्तु चकोर ने उनमें भेद किया है- चन्द्र प्रिय है और सूर्य शत्रु है।

यद्यपि बरेली में भी सहस्रों सियाराम की मूर्तियां थी, किन्तु वे सब मेरे लिए परिवार के सज्जनों को छोड़कर, निर्गुण माटी के गोल मटोल स्तूप मात्र थे। आगरे के आप लोग शत-शत सम्बन्ध और मधुमय स्मृतियों के सूत्रों से बंधे हुए मेरे लिए सगुण और सजीव हैं। यद्यपि सगुण रूप का जानना भी कठिन है, तथापि मुझे

सबके व्यक्तित्व सबकी विशेषताओं, एषणाओं और सनकों का थोड़ा बहुत पता है। सबका हिस्ट्री शीट (बुरे अर्थ में नहीं) गूढार्थी रेखा संकेतों में उनकी मुख मुद्रा पर अंकित रहता है। कोई सनातन धर्म के दृढ़ गढ़ हैं, उन पर पश्चिमी सभ्यता का दूजा रंग नहीं चढ़ता, कुछ मुझ जैसे बैपेंदी के लौटे हैं। कोई धर्मभीरू हैं तो कोई साईकिल आदि वाहनभीरू। कोई माधुर्य के उपासक होते हुए मधुमेह के भय से मधुर वस्तुओं का चौथ चन्दा की नाई परित्याग किए हुए हैं। कोई ज्ञान पिपासा में मस्त हैं तो कोई ज्ञान वितरण में। कोई रोटेरी के चक्कर लगाने में आनन्दानुभव करते हैं, तो कोई वेदान्त मंदिर तक दौड़ लगाने में आनन्दानुभव करते हैं, तो कोई वेदान्त मन्दिर तक दौड़ लगाने में व्यस्त रहते हैं। एक महोदय स्कूल कालेजों की कमेटी मीटिंगों में उपस्थित होने को अपना सौभाग्य समझते हैं। एक साहब मुझसे वार्धक्य की भावना दूर भगाने के लिए उर्दू कवि अकबर की निम्नोलिखित शेर दुहराते नहीं थकते :-

बुढ़ापा वक्त की बेजा रवानी है।

अगर जिन्दादिली है तो,

बुढ़ापा भी जवानी है ॥

एक महोदय मेरे समवयस्क हैं किन्तु मुझसे अधिक सक्रिय हैं। वे मेरे इन उत्सवों को वृथाडम्बर बतलाते नही उकताते।

सभी का अपना अपना व्यक्तित्व है। सियाराम के व्यक्त रूप होने और निजी सम्पर्क के नाते आप सभी मेरे उपास्य और आराध्य हैं। आज तो आगमन की तिथि निश्चित होने पर भी आप मेरे अतिथि देव हैं। इस द्विविधि देवत्व से विभूषित आगत महानुभावों का मैं हृदय से स्वागत करता हूँ और इस आशा और विश्वास से कि 'सर्व देव नमस्कारं, केशव प्रति गच्छति' आप सबको बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

जन्म दिवस मनाने में थोड़ा आडम्बर तो है ही किन्तु इसका अपना महत्व है। इसके द्वारा जो सज्जन समागम होता है और उनकी शुभकामनाएं और आशीर्वाद प्राप्त होते हैं वे मेरे लिए अमूल्य हैं। उनसे मेरी आत्मा को बल मिलता है और सत्कार्यों के लिए प्रेरणा मिलती है। उत्सव प्रियता मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। 'आत्मनः कामाय सर्वं प्रियं भवति' जिस उत्सव का अपने से सम्बन्ध हो उसकी प्रियता और भी बढ़ जाती है। जन्म दिवस ऐसा ही उत्सव है। इस 'गृहकारज नाना जंजालों' से संकुल जीवन की ऊब मिटाने के लिए पावन सत्संग के कुछ क्षण मिल जायं तो थोड़ी देर के लिए आत्मा के विस्तार का अनुभव होने लगता है। आत्म-

प्रसाद के रूप में मज्जन फल तत्काल मिल जाता है। 'सत्संगति महिमा नंहि गोई'। इसके अतिरिक्त नव वर्ष की भांति जन्म दिन पर भी नये संकल्प करने और परात्पर परमात्मा को धन्यवाद देने का भी अवसर मिल जाता है। 'राधा गोविन्द सुमरिवो को बहानो' मिल जाता है। इस शत-सन्धि जर्जर परिणाम पेशल शरीर से जो काम बन पड़े उसको मैं ईश्वर की देन ही समझता हूँ। ईश्वर की कृपा रही, नहीं तो रोग के विस्फोटक जाल से घिरे रहते हुये कुछ करना कठिन हो जाता है। रोग अपना अस्तित्व मात्र प्रकट करते रहे किन्तु उन्होंने कोई बाधा नहीं डाली। 'रहिमन तब लौं जीनों भलो, जो लो'दीबो पड़े न धीम' देने को तो मेरे पास कुछ नहीं है। शरीरिक श्रम के नाम से मैं भागता हूँ। अपने अर्जित ज्ञान का दूसरों को भी आस्वाद कराना मैं सीख गया हूँ। वह मैं थोड़ी बहुत मात्रा में यथाशक्ति कर लेता हूँ। इतना भी चलता रहे तो मैं अपने को धन्य मानूंगा। मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि मैं सज्जन और सज्जनता, नेता के गुण और घरेलू लड़ाई झगड़ों पर तीन चार सामाजिक लेख लिख सका। इन लेखों की इतनी सामग्री हो गई कि एक निबन्ध संग्रह बन सके। इन लेखों से समाज में साम्य और सद्भावना स्थापित होने में थोड़ी भावना स्थापित होने में थोड़ी सी सहायता मिले तो मुझे आलोचना का क्षेत्र छोड़ने का खेद न हो। हिन्दी आलोचना का क्षेत्र सम्पन्न बनता जा रहा है। इसकी मुझे हार्दिक प्रसन्नता है किन्तु उसमें अध्ययन की भारी जरूरत है। वह मेरे वश के बाहर है। मैं इस समय जीवन में सौष्ठव, साम्य और सम्पन्नता लाने वाले सामाजिक निबन्धों की अधिक आवश्यकता समझता हूँ। मुझे बड़ा सन्तोष है कि मेरे राष्ट्रीय निबन्धों का संग्रह प्रकाशित हो गया। इसके लिए मैं श्री जगदीश प्रसाद जी अग्रवाल का आभारी हूँ कि उन्होंने आर्थिक हानि लाभ का विचार किये बिना मेरे यश की रक्षार्थ वह संग्रह बड़ी सुरुचि के साथ छापा।

मुझे जीवन में किसी से शिकायत नहीं। मुझे अपनी योग्यतासे अधिक धन और सम्मान मिला। मैं अपनी साहित्यिक और ज्ञान सम्बन्धी न्यूनताओं तथा नैतिक कमजोरियों को जानता हूँ। सांप के पैर सांप को ही दीखते हैं फिर भी आप लोगों ने अपना आदर, प्रेम और विश्वास दिया, इसके लिए मैं आप लोगों का हृदय से अनुग्रहीत हूँ। स्वास्थ्य में जरूर कुछ कमी रही किन्तु मुझे सन्तोष है कि मैं संध्योपासन की नियमितता और समयपरता के साथ दोनों समय थोड़ा बहुत टहल आता हूँ, उसको मैं भगवान की प्रदक्षिणा समझ लेता हूँ और भोजन रुचि के साथ कर लेता हूँ। निद्रा मेरा आह्वान स्वीकार कर लेती है। कमी केवल एक ही बात की है, वह है कुछ न करने की। अब पढना क्लांतिमय होता है। ईश्वर भजन की भी

सीमा है, मुझमें उतनी भक्ति भावना नहीं कि उससे तृप्ति न हो। मुझे चाहिए सज्जन समागम और निष्प्रायोजन, मनोरंजक वार्तालाप। इसके लिए आप लोगों से प्रार्थना है कि समय-समय पर पुण्य दर्शन देकर मेरे समय भार को और हो सके तो कार्य भार को भी हल्का करते रहें।

आप लोगों को पुनः पुनः धन्यवाद देकर विश्राम लेता हूँ।

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा, कश्चिद् दुःख भाग्भवेत् ॥

मेरे जीवन को सफल बनाने वाला

वैसे तो उर्दू की एक कहावत के अनुसार कि 'गिरते हैं शहसवार ही वह तितल क्या गिरेंगे जो चढना सीखते हैं' मैं डबल शहसवारों में से हूँ। मैं वास्तविक रूप से भी घोड़े पर से दो बार गिर चुका हूँ। और अलंकारिक रूप से भी जीवन की घुड़दौड़ में दो बार नहीं, कई बार गिर चुका हूँ। मैं फेल होकर ही पास हुआ हूँ। मेरे पास होने के लिए फेल होना उतनी ही जरूरी है जितना सूरज निकलने के लिए रात का आना। फिर भी बड़े आदमियों की गणना में, विशेषकर आत्मकथा लिखने में अपने को पांचवें सवारों में समझता हूँ। महात्मा गांधी, जवाहर लाल नेहरू, डाक्टर श्यामसुन्दरदास और सेठ गोविन्ददास की आत्म कथाओं के समकक्ष मैं भी अपनी 'मेरी असफलताएं' नाम की आत्म कथा बिना किसी संकोच के अनुभव किये हुये रखता हूँ। मैं क्षम्य गर्व के साथ कह सकता हूँ कि उसमें मेरे जीवन की असफलताओं का चित्रण बड़ी सफलता से हुआ है। किन्तु फिर भी मेरे जीवन में वास्तविक सफलता भी है। उसका अधिकांश श्रेय श्री राधेलालजी कुम्भकार को है। उन्होंने ही श्रीमद्भगवद्गीता की कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन् की निष्काममयी अमर एवं दिव्य शिक्षा का अतिक्रमण करने में सफल बनाया है। श्री राधेलाल जी मेरे अन्नदाता तो नहीं, अन्नदाता तो अलंकारिक रूप से मेरे प्रकाशक ही हैं, मेरे फलदाता हैं, वे कर्मों के फल से अधिक मधुर और वांछनीय फल देते हैं।

न्यायशास्त्र का विधार्थी होने के नाते कुम्भकारों से मेरा सहज प्रेम है। कारण की परिभाषा के सम्बन्ध में 'अन्यथा सिद्ध' की बात बतलाते हुये नैयायिक लोग कुम्हार के गधे का उल्लेख करते हैं। वे बतलाते हैं कि घट को बनाते समय यदि कुम्हार का गधा खड़ा हो तो वह घड़े का कारण नहीं बनेगा। कुम्हार के गधे ने मुझे कई बार लेख लिखने के कष्ट से बचाया है। दो एक बार होली के आग्रहपूर्वक लेख

मांगे जाने पर वीणापाणि सरस्वती के हंस की कृपा के अभाव से स्फूर्ती उड़ जाने के कारण मैंने अखबारों को यह लिखकर कि कहे से कुम्हार गधे पर नहीं चढ़ता है सहज में पीछा छुड़ाया है। कुम्भकार समग्र जीवन का तो नहीं, दो मुख्य आश्रमों का प्रतिनिधित्व करता है। गृहस्थ द्विज का अपने सूत्र से और संन्यासी का, अपने दंड से। रामराज्य में भी दंड जतिनकर ही नहीं वरन् कुम्भकारक भी रहा होगा। वह भगवान की भांति अपनी सृष्टि का सूत्रधार और दंड विधानकर्ता भी है। वैसे तो उसकी सृष्टि का जीवन नष्ट होने को है किंतु कभी-कभी वह उससे अधिक चिरस्थायी होती है। कुम्भकार सृजन का प्रतीक है। वह भी चक्रपाणी है। उसका चक्र भी कालचक्र की भांति चलता ही रहता है और पात्रों की सृष्टि करता रहता है। उसके पात्रों को स्वर्ण और सती सीता की भांति अग्नि- परीक्षा में उतीर्ण होना पड़ता है।

कुम्भकार को प्रजापति भी कहते हैं। उनकी त्रिदेवों में गिनती होते हुए भी वे उपेक्षित हैं। ब्रह्माजी का कोई मंदिर नहीं, शायद एक मात्र मंदिर अजमेर शरीफ मे है, किंतु वे लेखकों की उपास्या वीणा अपने जीवन को सफल बनाने के अर्थ एक कुम्भकार को, जो प्रजापति का पार्थिव प्रतीक है, अपनाया है और अपनाकर छोड़ा नहीं है, 'अंगीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति'। शिवजी ने तो विष को भी नहीं त्यागा, तब मैं अमृतोपम फल देने वाले राधेलाल जी को किस प्रकार त्याग सकता हूँ ?

श्री राधेलाल जी लंबे तड़के फौजी नौजवान हैं। उनके परिधान में कोई विशेषता नहीं है, सिवाय इसके कि साहित्यिकों की भांति उनके गले के बटन होत हुए भी वे 'अजागलस्तनवत' निरर्थक रहते हैं और चर्मरहित शुद्ध अहिसात्मक उपानह धारण करते हैं। उनके कानों के कुण्डल नहीं तो मुरकी उनको संस्कारप्रिय आर्यसमाजियों की प्रशंसा के पात्र बनाए हुए हैं। वे स्वयं भी उसे अपने माता-पिता की रूचि विशेष और घर की संपन्नता की घोटक बताते हैं परंतु आर्यसमाजी लोग कर्णवेध संस्कार में वैज्ञानिक लाभ आवश्यक बताते हैं। उनको फौजी परेड की शब्दावली अभ्यस्त है और ऊंची आवाज में जो गली नुक्कड़ से घर के अन्तरतम कक्ष में भी सहज श्रवणगोचर होती है, अपना विज्ञापन प्रकाशित या घ्वनित करते हैं। वे प्रथम महायुद्ध में कम्युनिस्टों के तीर्थ स्थान रूस में फौजी सिपाही के रूप में हो आए हैं। वहां के फलबागानों का उल्लेख करते हुए आज भी उनके मुंह में पानी आ जाता है फौज से उनको दस रूपया मासिक अवकाशवृत्ति भी मिलती है। किंतु जीवन

यापन के लिए वह वृत्ति पर्याप्त नहीं, इसलिए उन्हें दूसरे मार्ग भी खोजने पड़ते हैं। एक मार्ग तो उनकी पैतृक कुम्भकार वृत्ति का है। सभ्यता की प्रतीक स्वरूपा कोकरी का व्यापक प्रचार भी कुल्हड-सकोरों को अपदस्थ न कर सका। जय हो हजार दो-दो हजार की संख्या में प्रीतिभोज देने वाले वैश्यकुल विभूषणों की। भगवान कृष्ण के उपदेश का यह अंश तो उन्होंने माना है, **‘स्वधर्मे निधन श्रेयः’** किंतु परमधर्मे भयावह की उन्होंने उपेक्षा की है। मूलवृत्ति तो उनकी कुम्भकार वृत्ति भी चल फिर कर करते हैं। दिन के पूर्वार्द्ध में फल वृत्ति भी चल फिर कर करते हैं और उसमें उनका स्वार्थ और परमार्थ सध जाता है। स्वार्थ सिद्धि का ध्येय तो मुख्य है उसको स्वीकार करने में वे लज्जित नहीं होते किंतु फल इसलिए बेचते हैं कि लोगों के लिए फल खाना हितकर है। लाम पर से लौटने के पश्चात् वे तेल के सेव बेचते थे। उनको एक सिद्धान्तवादी, उन्ही की तरह अवकाश प्राप्त न्यायाधीश, मिल गए। उन्होंने कहा **‘क्या बीमारी की जड़ बेचते हो’**। राधे जी ने (मालूम नहीं उनके पिता किस संप्रदाय के थे यदि वे साहित्यिक होते तो खोज का विषय बन जाता किंतु मेरे वैष्णवी संस्कारों में पोषित कानों की जिनमें कभी जय राधेश्याम की ध्वनि आ जाया करती थी प्रिय लगता है) पूछा कि फिर क्या बेचा करें? उत्तर मिला कि फल, जिसको खाकर लोग हृष्टपुष्ट हों। जितना कि रत्नावली का उपदेश भक्त चूणामणि तुलसीदास जी के जीवन क्रम परिवर्तन में सहायक हुआ, उतने ही न्यायाधीश जी के वाक्य राधेलाल जी के जीवन को मोड़ देने में सफल हुए। तभी से फल विक्रय कक्षा में दीक्षा ली और नित्य पैदल छीपीटोला की यात्रा प्रारम्भ करदी। अब वे मेरी तरह और मुझ से आगे ही सत्तर और पचहत्तर के बीच की अवस्था में हैं। उनका पुरुषार्थ स्पृहणीय है। वे कम से कम सात मील का चक्कर लगा लेते हैं। वे निरीह और निर्द्वन्द्व हैं। उनके कोई समस्याएं नहीं। फल बेचने में वे राष्ट्र निर्माण का काम करते हैं। थोड़ा बहुत **‘अधिक फल खाओ’** का प्रचार भी कर देते हैं। वे दो एक दीर्घजीवी सज्जनों का विशेषकर पण्डित राजनाथ कुंजरू (सुप्रसिद्ध राजनीतिक हृदयनाथ कुंजरू के ज्येष्ठ भ्राता) और पण्डित लालताप्रसाद डिप्युटी कलक्टर जो अपनी उम्र बताने में संकोच करते हैं कि कहीं नजर न लग जावे, के ज्वलंत उदाहरणों से अपनी वाणी को पुष्टि प्रदान करते हैं।

फलों के मिठास और उनकी सरसता के बारे में वे उक्त महान् भावों की गवाही आस प्रमाण के रूप में उपस्थित करते हैं। यदि उससे भी आपका संतोष न हो तो वे प्रत्यक्ष प्रमाण की शरण लेते हैं। **‘प्रत्यक्ष किं प्रमाणम्’** की उक्ति देने का

पाण्डित्य तो उनमें नहीं है किंतु उसका भाषापर्याय 'हाथ कंगन को आरसी क्या है' उनके अधर पुटों पर ईषत हास्य के साथ आ ही जाता है। फिर वे नीति और न्याय की दुहाई देने लगते हैं। 'सरकार का पैसा जाता है,' कुछ मुफ्त में थोड़े ही लेते हैं, अच्छी तरह देख लें, एक दो फाक में मेरा कुछ नहीं बिगड़ता। मुझे बेईमानी का पैसा नहीं चाहिए। उमर भर सरकार की रोटी खाई है। मैं यह कहना चाहता हूँ कि रोज की खायी हुई चीज क्या खाऊँ उनका स्वाद उनकी शक्ल में ही है किंतु उनके जोरदार भाषण के आगे मेरे सारे तर्क कुण्ठित हो जाते हैं। एक बिना सरकारी अफसरी के सरकार और हुजूर की पदवी से विभूषित हो जाता है और कुछ जिह्वा का प्रलोभन, सहज में ही फल की फाक लेने को हथ उठ जाता है और वह जब तक बिलकुल ही खट्टा या नीरस नहीं होता तब तक लेना ही पड़ता है। ऐसा कोई दिन हो जब वे असफल लौटते हैं किंतु विजयोल्लास उनकी मुखमुद्रा पर आने नहीं पाता है। वे धीर-गंभीर बने रहते हैं।

वे अपनी चीज की प्रशंसा करना जानते हैं, केलों के मोटे होने के संबंध में वे कहेंगे- 'सोट की सोट, बल्ली की बल्ली।' संतरो और मुसम्मियों की शिफारिस में वे कहेंगे कि पतले छिलके के हैं, रस चूता है, लो काटकर दिखा दूँ यदि उनके पास मुसम्मियों हुईं तो मुसम्मियों के गुणगान करेंगे और संतरे हुए तो उसकी पुष्टिकारिता की प्रशंसा करेंगे। गंगा गए गंगादास और जमुना गए जमुनादास। यदि संतरे छोटे और हरे हुए तो कह दिया कि बड़े संतरे तो देखने के ही अच्छे होते हैं उनके अंदर फांके सूखी होती हैं। वे पोले होते हैं उनमें छिलके के सिवाय कुछ नहीं होता और यदि लाल और बड़े हुए तो छोटे जरा तुरस थे। ये मीठे तो हैं। वदतो व्याघात और असंगति उनके लिए दोष की कोटि में नहीं आते। अमरूद उनके सब इलाहावादी होते हैं और प्रायः सभी तोते की चोंच का प्रमाणपत्र पाए हुए होते हैं। कुछ पिचके पिचकाये होते हैं। उनके लिए रेल की दुर्व्यवस्था दोषी ठहराई जाती है। भाव के संबंध में वे आवाज कुछ मंद कर कहते हैं कि कहिएगा नहीं कि अमुक बाबू जी को तो चौदह आने सेर दे आया हूँ आपको बारह आने से दूंगा। हर साल वे मुझे कमती मूल्य पर देते हैं किंतु बात यह है कि उन फलों का वास्तविक मूल्य वही होता है जिस पर वे मुझे देते हैं। रोज यही व्यापार चलता है, किन्तु हर रोज कुछ नवीनता रहती है। उनका माल खूब बिकता है, कुछ बातों के बल और कुछ सस्तेपन के कारण।

वे झूठ अवश्य बोलते हैं किन्तु इतना ही जितना लेखक लोग। मैं रोज थोड़ा

91 / जीवन रश्मियाँ

बेवकूफ बन जाता हूँ। किन्तु मैं 'वतरस लालच लाल' के कारण बेवकूफ बनना पसन्द करता हूँ। फल मेरे जीवन की आवश्यकताओं में से हैं। उसकी बातें मेरे विनोद का कारण बनती हैं। आवश्यकता की पूर्ति के साथ यदि विनोद भी हो जाये तो क्या महंगा है। मैं काकभुषंड जी और लोमश ऋषि से प्रार्थना करता हूँ कि राधेलाल जी चिरायु हों और उनके फल मुझे सदा पुष्टि, तुष्टि और स्फूर्ति देते रहें।

[नवभारत टाइम्स, २४ अप्रैल १९६०]

मेरे मानसिक उपादान

मन्दः कवियशः प्रार्थी, गमिष्याम्युपहास्ताम् ।

प्रान्शुलभ्ये फले, मोहादुद्वाहुरिववामनः* ॥

मैं नैयायिक तो नहीं, किन्तु मैंने न्यायशास्त्र का चंचु प्रहारी ज्ञान अवश्य प्राप्त किया है। बीछी का मंत्र न जानते हुये सांप की बांबी में भी हाथ डाला है। अपने लिये-दिए ज्ञान के आधार पर भारतीय तर्क शास्त्र पर एक छोटी सी पुस्तक भी लिखी है। इस ईषत् अध्ययन और परिश्रम प्राप्त ज्ञान का निन्यानवे प्रतिशत ज्ञान समय के प्रवाह में मेरे स्मृति पटल से धुल गया है, किन्तु इतना अवश्य याद रहा है कि कारणों में से एक उपादान कारण होता है, जैसे घड़े के निर्माण में मिट्टी। न्यायशास्त्र से अपना सम्पर्क बनाये रखने और कुछ पांडित्य प्रदर्शन के लिए उपादान जैसे पारिभाषिक शब्द का मैंने प्रयोग किया। पाठकगण मेरी इस कमजोरी को क्षमा करें।

मैं ठोंक-पीटकर लेखकराज तो बन गया किन्तु मेरे मानसिक उपादान आचार्य विश्वनाथ के साहित्य-दर्पण में दिये हुये हास्य-रस के उदाहरण के कुक्कुट मिश्र पादाचार्य के मानसिक उपादानों से अधिक नहीं है। वह उदाहरण इस प्रकार है:-

गुरोर्गिरा पंचदिनान्यधीत्य वेदान्त शास्त्राणि दिनत्रयं च ।

अभी समाघ्राय च तर्कवादान्, समागताः कुक्कुट मिश्र पादाः ॥

अर्थात् गुरु अथवा प्रभाकर -मीमांसा का पांच दिन अध्ययन कर (मैंने डाक्टर गंगानाथ झा के 'प्रभाकर स्कूल ऑव मीमांसा' नाम के शोध प्रबन्ध के दर्शन भर किये हैं, गुरु का अर्थ शिक्षा गुरु भी हो सकता है) और अद्वैत वेदान्त को तीन दिन पढकर तथा न्यायाशास्त्र का घ्राणेन्द्रिय से ही ज्ञान प्राप्त कर कुक्कुट मिश्र

* बुद्धि का मैं मन्द हूँ और कवियों का सा यश चाहता हूँ। मैं उसी तरह उपहास का भाजन बनूंगा, जिस तरह कोई बौना ऊंचे फल के लिए बांह उठा कर हास्यापद बनता है।

पादाचार्य पधार रहे हैं।

मैंने अपने अध्ययन में समय तो अधिक लगाया किन्तु नौ दिन में अढाई कोस की गति से चलकर। 'शनैः कन्थाः शनैः पन्थाः शनैः पर्वत लंघनम् शनै विद्याः वित्तंच एते पंच शनैःशनैः' की नीति से मैंने परीक्षा की मंजिले पार की। मैं फेल होकर ही पास हुआ हूँ।

शिक्षा में घर के वातावरण और संस्कारों का बहुत कुछ हाथ रहता है। मेरे घर का वातावरण धार्मिक था, मेरी माता जी अल्प शिक्षित होती हुई भी सूर, तुलसी और कबीर के भजनों को बड़े प्रेम से गाया करती थी और नित्य सुखसागर का पाठ किया करती थी। मेरे पिता जी बड़े भक्त और धर्मनिष्ठ थे। वे योगवाशिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता में बड़ी श्रद्धा रखते थे। गीता का वे नित्य पाठ किया करते थे। शंकर वेदान्त का उनको ज्ञान यद्यपि भाषा की पुस्तकों से ही हुआ था तथापि वे उसकी तर्क पद्धति से भली प्रकार परिचित थे और उसमें बड़ी आस्था रखते थे। इस धार्मिक वातावरण में मेरी रूचि भी धार्मिक हो गई और उर्दू, फारसी का विधार्थी होते हुए भी संस्कृत की ओर मेरा आकर्षण बढ़ा।

आठवें दर्जे तक मैंने उर्दू फारसी पढी। उर्दू की अपेक्षा मैं फारसी में अच्छे नंबर लाता था। यद्यपि मैं फारसी स्वाद से (फारसी लिपि का स्वाद अक्षर, खाने का स्वाद नहीं) ही दो बार लिख चुका था। फारसी का व्याकरण बहुत सरल और सिद्धान्ताकुल है। इसी से मेरी समझ में जल्दी आ जाता था और नम्बर भी अच्छे मिल जाते थे। उस समय का फारसी प्रेम मेरी शैली में फारसी, अरबी के शब्दों के पुट के लिए उत्तरदायी है।

नवीं कक्षा में जब फारसी के साथ अरबी लेने की बात आयी तब मेरे आर्यत्व के संस्कार जाग उठे। फारसी तक कुशल थी, क्योंकि वह भी एक आर्य भाषा थी। मैंने फारसी छोड़कर संस्कृत ले ली। घर के सनातनधर्मी संस्कार आड़े आये। देवनागरी अक्षरों से परिचय था ही और दो चार टूटे फूटे श्लोक भी याद थे। नवीं कक्षा में मेरी संस्कृत की गाड़ी चलने लगी।

मेरे पूज्य पिता जी मेरे नास्तिक हो जाने के भय से मेरे अंग्रेजी के अतिरिक्त अध्ययन के विशेष पक्ष में न थे, किन्तु संस्कृत के अतिरिक्त अध्ययन को वे प्रोत्साहन देते थे। चाणक्यनीति और भट्टहरि शतक जिसमें शृङ्गार शतक भी शामिल था, बड़ी रूचि के साथ पढ़े और कुछ श्लोक कंठस्थ भी किये, जिससे अपने पाण्डित्य की धाक जमा सकूँ। हाई स्कूल की कक्षाओं में मेरा अंग्रेजी का अतिरिक्त अध्ययन बहुत सीमित रहा। शायद राबिन्सन क्रूसो का संक्षिप्त संस्करण और कुछ

हिस्सा गुलीवर्स ट्रेविल्स के पढे थे।

कालेज में आकर अंग्रेजी का अतिरिक्त अध्ययन खूब चला। पिता जी की आंखों से मैं दूर था। डिकिन्स और थैकरे के उपन्यास पढ़े। जेन ऑस्टिन की 'प्राइड एंड प्रेज्यूडिस' तथा स्कॉट की 'केनिलवर्थ' पाठ्यक्रम के अन्तर्गत पढ़ी। निबन्ध साहित्य में आर० एल० स्टीवेन्सन के 'वर्जीनिबस प्यूरिस्क' में संग्रहीत निबन्ध तो पाठ्यक्रम में ही थे। किन्तु उनके अतिरिक्त डी० क्विन्सी के 'कन्फेसन्स आव एन ओपियम ईटर', 'ओटोक्रेट एट दी ब्रैकफास्ट टेबिल' में संग्रहीत निबन्ध लेम्ब और एडीसन के निबन्ध, एल्फाऑव दी प्याऊ के निबन्ध तथा कई निबन्ध संग्रहों के पन्ने पलटे। कार्लाइल की 'हीरो वर्शिप' और 'सार्टर रिसार्टस' तथा इमर्सन के निबन्धों का चलता परिचय प्राप्त किया। इन पुस्तकों में कुछ नए विचार अवश्य लिये किन्तु इनका कोई स्थायी प्रभाव नहीं पड़ा। हक्सले और हर्बर्ट स्पेन्सर का अनीश्वरवादी साहित्य भी पढ़ा। विज्ञान का भी शौकिया अध्ययन किया। तर्कशास्त्र में मेरी बड़ी रूचि रही और कक्षाओं का पिछड़ा विद्यार्थी तर्कशास्त्र की कक्षा का अग्रगण्य हो जाता था। तर्कशास्त्र के अध्ययन ने पीछे चलकर मेरी लेखन शैली को कमबद्धता और विचारों को संगति दी।

कालेज में आकर संस्कृत का अतिरिक्त अध्ययन तो प्रायः रूक सा गया। किन्तु कालेज के पाठ्यक्रम की पुस्तकों को मैंने काफी रूचि के साथ पढ़ा। रघुवंश के प्रथम दो सर्ग इन्टर में पढ़े। कवि कुल गुरु कालिदास की प्रतिभा से परिचित हुआ। बी० ए० में भारवि और भवभूति से परिचय हुआ। किरातार्जुनीय की तो केवल एक ही उक्ति याद रही 'हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः' किन्तु रघुवंश और उत्तर रामचरित के कई श्लोकों को मैंने अपने लेखों में कई स्थानों पर प्रयोग किया। अतिरिक्त अध्ययन में मैंने केवल अभिज्ञान शाकुन्तल हिन्दी अनुवाद के सहारे मूल संस्कृत से पढ़ा। इसी प्रकार मेघदूत के भी कुछ चुने हुए श्लोकों का अध्ययन किया। कालिदास के प्रकृति प्रेम, उनकी स्वाभाविकता और उनका 'सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं' वाले सौन्दर्य बोध ने मुझे बहुत प्रभावित किया। वैद्य महोदय के संक्षिप्त महाभारत के शायद 2000 श्लोक मेरे रेपिड रीडिंग के पाठ्यक्रम में थे। वाल्मीकि रामायण के कुछ मार्मिक स्थल पढ़े, सुने भी सुनाए भी। महाभारत की तो यह शिक्षा, 'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्' गांठ बांधी और वाल्मीकीय रामायण के अयोध्याकांड के राम-भरत संवाद से धर्म, अर्थ काम के समन्वय का पाठ याद किया। श्रीमद्भगवद्गीता से आत्मौपम्य दृष्टि और युक्ताहार विहार की शिक्षाएं ग्रहण की। इन विषयों पर रूचि के साथ लिखा। इनको जीवन में अपनाना भी चाहता रहा,

पर सफलता आंशिक ही मिली।

मैंने पढ़ा कम, किन्तु पंडितों की संगति में सुना अधिक। अपनी साहित्यिक पूंजी का कुशलता से प्रयोग किया और संस्कृत से अपरिचित लोगों पर पांडित्य की धाक जमाई। मेरे कालेज जीवन में मेरे धार्मिक संस्कार मन्द हो चले और नये राष्ट्रीय संस्कारों ने जड़ जमाई। सन् १९०५ या १९०६ में बंगभंग के फलस्वरूप स्वदेशी आन्दोलन छिड़ा। उसकी लहर ने देश को आप्लावित कर दिया। मुझ पर उस आन्दोलन का गहरा प्रभाव पड़ा। जेल जाने के भय से आन्दोलनों में सक्रिय भाग तो न लिया, किन्तु भावनाएं राष्ट्रीय हो गईं। उसके फलस्वरूप 'भारत भाल बिन्दी हिन्दी' में मेरा प्रेम बढ़ा और मैं भी 'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल' में दृढ़ विश्वासी हो गया। मेरा ध्यान हिन्दी के नवोदित साहित्य के अतिरिक्त अध्ययन की ओर आकर्षित हुआ।

यह तो रही काव्य की बात, अब काव्यशास्त्र और दर्शनशास्त्र की बात लीजिए। पहले दर्शन शास्त्र की बात कहूंगा। भारतीय दर्शनों का पहला परिचय मुझे मैक्समूलर की सिक्स सिस्टमस ऑव इंडियन फिलोस्फी से हुआ। शांकर वेदांत का चलता ज्ञान मुझे पिता जी के उपदेशों तथा उनके उपदेश पर विचार सागर और योगवाशिष्ठ के हिन्दी अनुवाद के अनिच्छापूर्वक किए हुये लिये दिए अध्ययन से हुआ। न्यायशास्त्र में मेरा प्रवेश अन्नम भट्ट की 'तर्क संग्रह' से हुआ। अनुमान खण्ड ही मैंने पढ़ा है। कुछ तर्क भाषा भी पढ़ी और 10 या 15 कारिकायें 'न्याय सिद्धांत मुक्तावली' की भी पढ़ी। नव्य न्याय और प्राचीन न्याय की बहुत सी बातें मैंने पूज्यपाद गोस्वामी दामोदरलाल जी महाराज से सीखी। मैं अपने भारतीय दर्शन और काव्यशास्त्र के ज्ञान के लिए पूज्य गोस्वामी जी का बहुत ऋणी हूं। मैंने तर्कशास्त्र के रहे सहे ज्ञान की पूर्ति कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित 'हिस्ट्री ऑव इंडियन लोजिक' से की। मैंने कुछ अंश न्यायशास्त्र के वात्स्यायन भाष्य से भी पढ़े थे। सांख्य शास्त्र का ज्ञान मैंने ईश्वर कृष्ण की एक 'सांख्य तत्व कौमुदी की अंग्रेजी टीका से प्राप्त किया जो रायचंद्र प्रेमचंद्र स्कालरशिप के लिए एक थीसिस के रूप में डाक्टर सतीश चंद्र विद्याभूषण द्वारा लिखी गयी थी। यह उन पुस्तकों में से है जो थोड़े दिनों के लिए मांग कर लौटना भूल गया और फिर नहीं लौटायी। अब वह मेरे पास से भी किसी अज्ञात दर्शन प्रेमी के पास स्थानान्तरित हो गयी है।

शांकर भाष्य के अंग्रेजी अनुवाद के दर्शन मात्र मैंने किये और बौद्ध दर्शन के खण्डन के प्रसंग के दो चार सफे मूल संस्कृत से भी पढ़े हैं। तैत्तरीय उपनिषद् तथा श्री मद्भगवद्गीता के शांकरभाष्य के भी कुछ पन्नों का उलट-फेर किया है। गीता

के संबंध में जितना ज्ञान मुझे महाराज तिलक के गीता-रहस्य के हिंदी अनुवाद से हुआ, और किसी पुस्तक से नहीं हुआ। उसके अध्ययन से मुझे कर्तव्य-शास्त्र बहुत अंश में उसका ही उपजीवी है। भारतीय दर्शनों के ज्ञान के लिए मैं डा. राधाकृष्णन और डा. सुरेन्द्रनाथदास गुप्त का भी ऋणी हूँ।

मेरा काव्यशास्त्र का भी ज्ञान ऐसा ही लिया दिया है। सबसे पहले मुझे रस सिद्धांत का ज्ञान प्रज्ञाचक्षु पंडित धनराज शास्त्री से हुआ था। उसमें मुझे बहुत कुछ मनोवैज्ञानिक सामग्री मिलने की संभावना दिखाई दी। मैंने छतरपुर आकर पं. शल्लिगराम शास्त्री के अनुवाद से साहित्य दर्पण का पहला और तृतीय परिच्छेद पढ़ा। हिंदी में पद्माकर का 'जगद्विनोद' और देव की 'शब्द रसायन' पढ़ी। इसके अध्ययन में मिश्र बन्धुओं में कनिष्ठ भ्राता पण्डित शुकदेव बिहारी मिश्र से अच्छी सहायता मिली यानी उन्होंने कुछ गुत्थियाँ सुलझा दी।

छतरपुर के हेड एकाउन्टेन्ट लाला जगन्नाथ प्रसाद जी और वैद्यराज मदनगोपाल जी नायिका भेद में अच्छी गति रखते थे। उनसे भी साहित्य चर्चा चलती रहती थी। बिहारी सतसई मेने लाला जगन्नाथ प्रसाद से ही लेकर पढ़ी थी। लाला भगवानदीन भी छतरपुर के थे किंतु जब तक मैं वहां रहा तब तक उनसे परिचय नहीं हुआ। हिज हाईनेस महाराज सर विश्वनाथ सिंह जू देव के दरबार में नायिका भेद की चर्चा साम्प्रदायिक स्तर पर होती थी। वहीं उज्ज्वल नीलमणि में स्वयंदूतिका आदि नायिकाओं की चर्चा सुनी। वहीं मुझे रामभक्ति शाखा के श्रृंगारिक पक्ष का किंचित् आभास मिला। वहाँ एक रामभक्त सखी साधु आया करते थे। जो बातें आज अनुसंधान की विषय हैं उनकी चर्चा महाराज के दरबार में प्रायः नित्य होती थी।

व्याकरण और वेद के ज्ञान में मैं कोरा ही रहा। व्याकरण के अइ उण आदि माहेश्वर सूत्र भगवान शंकर के डमरू की डिम्-डिम् ध्वनि से अधिक मेरे लिए अर्थवान ने हो सके। भाषा-विज्ञान के अध्ययन के समय बुढ़ापे में उनके समझने का अवश्य कुछ प्रयास किया। फिर महाराज शंकराचार्य की यह उक्ति 'प्राप्ते सन्निहिते मरणे नहिं नहिं रक्षति दुक्रिय करणे, भज गोविंदं भज गोविंदं गोविंदं भज मूढ मते' की उक्ति याद आ गई। गोविंदं का भजन तो न हुआ, व्याकरण से अवश्य छुट्टी मिल गई। फिर भी व्याकरण के संबंध में मैं जड़ मूर्ख नहीं हूँ। शब्दों के रूपों में राम शब्द की सातों विभक्तियों और संबोधन के एक वचन के रूप याद हैं। वे भी एक श्लोक के सहारे, जो मैं नित्य अपनी प्रार्थना में दुहरा लेता हूँ। वह श्लोक इस प्रकार है:-

¹रामो राजमणिः सदा विजयते, ²रामं रमेशं भजे।

³रामेणाभिहता लंका, ⁴रामाय तस्मै नमः ॥

⁵रामान्नास्ति परतरं मे, ⁶रामस्य दासोअहम् ।

⁷रामे चित्तलयः सदा कर्तव्यः भो राम । (सम्बोधन)मामुद्धर ॥

व्याकरण का इतना ज्ञान है कि कथं को मैं द्वितीया नहीं कहता। मुझे वह श्लोक याद नहीं जिसमें व्याकरण की जड़ मूर्खताएँ गिनाई गई हैं और अंत में कहा गया है कि जो कथं को द्वितीया कहे, उसकी मैं द्वितीया (संगिनी) किस प्रकार बन सकती हूँ। 'कथं तस्याहं द्वितीया स्याम्' कुछ ऐसा ही है। किसी को 'द्वितीया' बनाने की स्पृहा तो नहीं है, किंतु व्याकरण की ऐसी गलती भी मैं नहीं करूंगा। व्याकरण की उँची बातों की जानकारी प्राप्त करने के लिए स्फोटवाद के सिलसिले में महात्मा भतृहरिः की 'वाक्प्रदीप' के दो चार पन्ने पढ़े थे। इसके अतिरिक्त यदि कोई व्याकरण की बात पूछता है तो, मैं कह देता हूँ कि पं. किशोरीदास वाजपेयी से पूछो। उपनिषदों तक तो मेरी उल्टी सीधी पहुँच रही, किंतु वेदों से अछूता हूँ। आर्यसमाज का संपर्क भी मेरे ज्ञान में वृद्धि नहीं कर सका। फिर भी मैं वेद पाठ में 'दादुर धुनि' से अधिक रस लेता हूँ। वेदोक्त 'जीवेम् शरदः शतम्' की कामना कर लेता हूँ। डा. वासुदेव शरण अग्रवाल लिखित वेद विद्या नाम की पुस्तक मंगा रखी है। वह मेरी शुभ दृष्टि की वाट जोह रही है। किताब आ गई है तो कभी न भी पन्ने पलट ही लूंगा। उपनिषदों में मूल से तो मैंने कठोपनिषद् ही अद्धा-पद्धा पढ़ा है। डा.रानाडे की पुस्तक 'कान्स्ट्रक्टिव सर्वे ऑव उपनिषदिक फिलोसफी' के सहारे अपनी पुस्तकों में उपनिषदों के उद्धारण काफी दिये हैं।

अभी तक मैंने दार्शनिक ग्रंथ ही लिखे थे, साहित्य में प्रवेश नहीं हुआ था। नवरस की तैयारी में साहित्य में भी प्रवेश हो गया। साहित्य दर्पण के दो परिच्छेद तो मैंने शास्त्री जी की टीका के सहारे पढ़ लिये थे। काव्य प्रकाश के प्रारंभिक श्रृंख एक मित्र (श्री बालकृष्ण देवधर) की पुस्तक से पढ़ लिये थे। नाट्यशास्त्र की रस निष्पत्ति की भट्ट लोल्लट श्री शंकुक आदि चारों आचार्यों की व्याख्या कीथ के संस्कृत ड्रामा में पढ़ी थी। उसका मूल स्रोत 'अभिनव भारती' तब उपलब्ध न था। मैंने तो काव्य प्रकाश का भी वह अंश तब तक संस्कृत में नहीं पढ़ा था। हिन्दी की पुस्तकों में उसकी चर्चा न थी। मैंने पूज्यपाद गोस्वामी दामोदरलाल जी से काव्य प्रकाश पर आधारित उसकी विशद् व्याख्या सुनी। नवरस के लिए बहुत कुछ सामग्री महाराज सर विश्वनाथ सिंह जी के पुस्तकालय से मिली। इसके लिए मैं वहाँ के असिस्टेंट लाइब्रेरियन पं. रामनारायण शर्मा का अभारी हूँ। नवरस के लिखने के सहारे रीतिकाल का चलता हुआ अध्ययन हो गया। मैंने उतना ही पढ़ा जितना कि

लिखने के लिए आवश्यक था। मेरे सौभाग्य से मुझे वांछित स्थल जल्दी मिल जाते थे। मैंने संस्कृत के ग्रंथों का अध्ययन हिंदी, अंग्रेजी, संस्कृत टीकाओं के सहारे किया है, किंतु मूल का पल्ला पकड़े रहा हूँ। शंकरन की 'सम कन्सेप्ट्स ऑव इंडियन क्रिटिसिज्म' (**कुछ ऐसा ही नाम था**) तथा अन्य दो एक ऐसी ही पुस्तकों मेरे पुस्तक लेखन में सहायक हुईं। उनसे यह तो पता चल ही गया कि संस्कृत पुस्तकों में क्या कहां है, फिर मूल पुस्तकों से भी पढ़ लिया।

छतरपुर से आने के पश्चात् हिंदी नाट्य विमर्श लिखने के लिए एक बार फिर कीथ के ड्रामा का अध्ययन किया और साहित्य दर्पण के छठे परिच्छेद का तथा धनंजय के दशरूपक के कुछ अंशों का अध्ययन किया। शायद भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के भी दो एक अध्याय पढ़े। नाट्यशास्त्र की संस्कृत सरल थी। उसे मूल से ही पढ़ा।

जैसी-जैसी साहित्य शास्त्र में गति बढ़ती गई, वैसे वैसे और ग्रंथों का भी अध्ययन शुरू हो गया। सिद्धांत और अध्ययन के कुछ अंशों की पूर्ति के लिए साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित 'काव्य प्रकाश' पढ़ा। दण्डी का काव्यादर्श वामन का काव्यालंकार सूत्र और कुंतक के वक्राक्ति जीवित के भी कुछ अंश पढ़े। भाषा-भूषण की टीका लिखते समय तुलना के लिए जयदेव के चंद्रालोक के भी कुछ लक्षण पढ़े कुबलयानंद का बस नाम भर सुना। अलंकारों पर लिखा अवश्य किंतु उनके सूक्ष्म भेदों में मन नहीं रमा। भेद प्रभेदों से मैं बहुत घबराता हूँ। 'या अल्ला गौड़ों में भी और' की पुकार करने वाले छद्मवेशधारी मुसलमाल की भांति मैं परेशान हो जाता हूँ। ध्वनि के मोटे भेद ही मेरी समझ में आये, वही मैंने लिखे। पोद्दार जी के काव्य कल्पद्रम और साहित्यालोचन से भी तब तक परिचय हो गया था। उन ग्रंथों का भी सहारा लिया गया। डा. दास गुप्ता की बंगाली पुस्तक काव्य विचार से भी बहुत मदद मिली।

अंग्रेजी में क्रिटिसिज्म की पुस्तकें मैंने बहुत नहीं पढ़ी, किंतु पढ़ी अवश्य। उनमें प्रमुख हडसन की पुस्तक (**शायद स्टडी ऑव लिट्रेचर नाम है**)। तथा आई० ए० रिचर्ड्स की पुस्तकों से कुछ अंश, शिप्ले की 'क्वेस्ट ऑव लिट्रेचर, वर्सफोल्ड की 'जजमेंट इन लिट्रेचर' और 'प्रिंसिपिल्स ऑव क्रिटिसिज्म,' मोल्टन और मरे की भी दो पुस्तकें जिनका नाम याद नहीं है, पढ़ी। क्रोचे की एस्थेटिक मंगाई तो दर्शन शास्त्र के अतिरिक्त अध्ययन के लिए किंतु वह मेरी आलमारी की शोभा कई वर्ष तक बढ़ाती रही। जब आचार्य शुक्ल जी और डाक्टर दास गुप्ता की पुस्तकों साहित्यशास्त्र के रूप में उसकी मैंने आलोचना पढ़ी, तब साहित्यशास्त्र की पुस्तक मुझ से किसी ने मांगकर लौटाई नहीं। मैंने अनुवाद किसी भी पुस्तक की

नहीं किया, उनसे विचार अवश्य लिये।

हिंदी काव्य में रामचरित मानस के धार्मिक भाव से कई पारायण किये। कथा भी रूचि से सुनी। उसके काव्य में सौंदर्यास्वाद के लिए ग्राउस साहब के अंग्रेजी अनुवाद का सहारा लिया। विनय पत्रिका (**बैजनाथ कुर्मी की टीका**) पिताजी की पुस्तकों में रखी रहती थी। मैं उसके साहित्यिक महत्व से परिचित न था। साहित्यिक और दार्शनिक परिचय तब हुआ जब स्वर्गीय डा. भगवानदास जी की 'साइन्स ऑव इमोशंस' में 'केशव कहि न जाय का कहिए का अंग्रेजी अनुवाद पढ़ा तब मैंने विनय पत्रिका पढ़ी। रामचन्द्रिका की आलोचनाएँ कई पढ़ी थीं। स्वयं आलोचना लिखने के लिए मैंने लाला भगवानदीन की टीका से रामचंद्रिका पढ़ी। बिहारी सतसई छतरपुर में ही पढ़ चुका था। भूषण ग्रंथावली कुछ अलंकारों के उदाहरण तथा भूषण पर एक रेडियो वार्ता प्रसारित करने के लिए पढ़ी। आधुनिककाव्य में कामायनी, साकेत और प्रियप्रवास तथा पंत और निराला की कविताएँ खूब रूचि के साथ पढ़ीं। हिंदी गद्य ग्रंथ भी पढ़े, उनका यहां उल्लेख नहीं करता। गद्य लेखकों में आचार्य रामचंद्र शुक्ल, श्रीमती महादेवी वर्मा, डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी और श्री सियारामशरण गुप्त से बहुत प्रभावित हुआ और पुस्तकें जैसे-जैसे आवश्यकता पड़ती गई, पढ़ता गया।

अन्य प्रांतीय भाषाओं में मुझे बंगला का कुछ अभ्यास है। बंगाली उपान्यास तो कई पढ़े (**बंकिम बाबू और रामेशचंद्र दत्त के उपन्यास विशेष रूप से**) काव्य में मेघनाद बध के दर्शन मात्र किये हैं और हिंदी अक्षरों में बंगाली गीतांजलि रस लेकर पढ़ी है। बंगाली में रूचि किसी अंश में मेरी संस्कृत गर्भित शैली के लिए उत्तरदायी है। फारसी छोड़कर संस्कृत लेना भी एक कारण है। नया मुसलमान अल्ला ही अल्ला पुकारता है। मैं नया हिंदु बना था, क्यों न संस्कृत बघारता? 'अध जल गगरी छलकत जाय' की बात है।

मैंने पढ़ा थोड़ा है, समझा अधिक है। जिन महापुरुषों के दर्शन करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है और जिनसे मैंने प्रेरणा ग्रहण की है, उनमें प्रमुख है रायबहादुर लाल बैजनाथ जी, महात्मा गोखले महामना पंडित मदन मोहन मालवीय, डाक्टर भगवानदास, डाक्टर रवींद्रनाथ ठाकुर और महात्मा गांधी। इन महापुरुषों ने मेरे मानसिक और आध्यात्मिक निर्माण में बहुत कुछ योग दिया है।

लक्ष्य ग्रंथों का अध्ययन लक्षण ग्रंथों के आलोक में किया और खूब रस लिया और दूसरों को भी अपने साथ आस्वादन कराया। मैंने अपनी थोड़ी साहित्यिक पूंजी का कुशल प्रदर्शन के सहारे उपयोग अधिक किया। यश और अर्थ दोनों का अर्जन किया। जो कुछ हूँ मैं आपके सामने हूँ। अपनी कमजोरियाँ मैं ही जानता हूँ। साँप के

पैर साँप को ही दीखते हैं। मैं अपने साहित्यिक अनुजों को यही उपदेश दूँगा कि वे मुझसे अधिक पढ़ें। मैंने जितनी थोड़ी पूँजी से काम चलाया है, उतने से उनका काम न चलेगा। दुनिया बहुत आगे बढ़ गई है। मैं तो उस खजाने से उतना ही सोना ले सका हूँ, जितना ऊपरी कलाई के लिए आवश्यक था। वे ठोस सोना लेने की कोशिश करें, उनसे पराजित होने में मुझे प्रसन्नता होगी। 'पुत्रादिच्छेत् पराजयम्।'

[सप्ताहिक मनु, ८ जुलाई १९६१]

हास्य-व्यंग्य

प्रीतिभोज समस्या: मीमांसा

भोजन जीवन का एक मुख्य व्यापार ही नहीं, वरन् जलवायु की भांति एक आवश्यक आधार भी है। इसके अतिरिक्त जब उसके साथ प्रेम और सामाजिकता का लगाव होता है तब वह प्रसन्नता का साधन बनकर एक उत्सव का रूप धारण कर लेता है। प्रीतिभोज क्षमा और दया के यजमान और याचक की भांति खिलाने वाले और खाने वाले दोनों को परस्परपकृत बना उनमें सौहार्द की भावना दृढ़ करते हैं। प्रीतिभोज दाता के हृदय के ओज, उल्लास और सौहार्द का प्रतीक बन कर आता है, यदि वह विद्या की भांति विनय संपन्न भी हो। 'अमी पियावे मान बिनु सो जन हमें न सुहाय।'

सौभाग्य से हमारे यहां भोजन परोसने का काम गृहस्वामी (**कभी कभी गृहस्वामिनी भी**) और उसके घर के स्थायी और तत्कालीन एवं वास्तविक और तथाकथित 'सर्वेसर्वा' लोगों के हाथ रहता है। वेतनभोगी या किराये पर मंगाए हुए श्वेताम्बर परिधारन विभूषित पट्टेदार साफाधारी होटल के वेयरों के हाथ में नहीं। हमारे यहां के परोसने वाले विनय की मूर्ति होते हैं और निश्चित तिथि पर आए हुए अतिथि लालाजी को किसी साधना के बिना ही 'राय साहब' बना देते हैं।

पेट से दिल तक

प्रीतिभोज सौहार्द सूत्र को दृढ़ बनाते हैं और भोजनभट्टों के लिए रसना को रसवती कर अपना नाम सार्थक करने का अवसर देते हैं। रिश्वत न खाने वाले अफसर भी खाना खाने के लिए निस्संकोच पहुंच जाते हैं और उनके पेट की जगह के साथ पीछे से दिल में भी जगह निकल आती है। एक अंग्रेजी कहावत है- 'पेट के मार्ग से दिल का रास्ता है।' बहुत अंशों में यह ठीक बैठती है। प्रीतिभोज सामाजिकताप्रिय किंतु स्वास्थ्य भीरू या धर्म भीरू लोगों को (**जिनमें पहलों की संख्या बढ़ती जाती है और दूसरो की घटती जाती है**) धर्म संकट में डाल देते हैं। सहृदय सज्जनों के लिए प्रीतिभोज से उदरपूर्ति तो गौण होती है, सामाजिकता और

सौहार्द्र भाव की पुष्टि अधिक होती है। बरसों के भूले बिछुड़े लोगों के दर्शन हो जाते हैं। और बहुत सा आवश्यक वार्तालाप भी हो जाता है। दावत देने वाले की महत्ता तो बढ़ ही जाती है, परंतु दावत में जाने वालों को भी महत्ता का प्रमाण पत्र मिल जाता है— अमुक अमुक गण्यमान्य व्यक्ति अमुक फर्म के मालिक की दावत में उपस्थित थे।

प्रीतिभोज प्रेम और हृदयोल्लास की अभिव्यक्ति के साधन के अतिरिक्त वैभव प्रदर्शन के भी अच्छे साधन होते हैं। कहीं तो वैभव प्रदर्शन दुग्धफेन-विनन्दित धवल घौत चादरों की श्वेतता, कहीं प्लेटों की कटाई सफाई की अनिनन्द्य सुघराई और छुरी काँटी की चमचमाहट से आँकी जाती हैं और कहीं मिठाईयों की संख्या और पत्तल या थाल के (लक्षणार्थ में) संभावित मूल्य से आँकी जाती हैं। आंगतुकों और अभ्यगातों (शब्दार्थ में अभ्यागत शब्द आदर सूचक ही हैं। अभि का अर्थ है अच्छी तरह का। यह वही शब्द है जो अभिभाषण में है) की संख्या दावत की सफलता का एक विशेष मापदण्ड है।

हर अवसर उपयुक्त

चाय की भांति प्रीतिभोज अवसर की अपेक्षा नहीं रखता। हर अवसर प्रीतिभोज का अवसर है— 'विद्यारम्भे विवाहे च' तो प्रीतिभोज होते ही हैं, डाक्टरों तथा पंडितों और नाईयों की भांति जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त दावतें भी मनुष्य का विशेषकर हिंदु का साथ नहीं छोड़ती। पूर्ण आयु और आस काम पुरुषों के मृत्युभोज भी, यदि घरवालों को संभई हो तो, अपना महत्त्व रखते हैं। किंतु आजकल प्रीतिभोज शादियों में तो एक अवश्यभावी घटना है। प्रीतिभोज ही ऐसी चीज है जिसमें समधी समधी की प्रतिस्पर्द्धा कर सकता है। हर एक वर या कन्या का पिता नहले पर दहला लगाने की कोशिश करता है और कुछ लोग तो पहले से ही अजेय नहीं तो दुर्जेय इक्का चला देते हैं। उस समय सागवाले से एक एक पैसा कम कराने की सफलता में पुत्र-जन्म की प्रसन्नता का अनुभव करने वाले धर्मावतार वैश्य-कुल-भूषण लोग धन कुबेर बन जाते हैं। कलापूर्ण निमंत्रण पत्रों का तारत्तम्य बंध जाता है। उनके चारों ओर परिक्रमा देने वाले ग्रह और उपग्रह अपने संबंधियों और जान पहचान के लोगों को भी अपना प्रभाव जताने के लिए आमंत्रित कर बैठते हैं। गृहस्वामी भी अपने हृदय के उल्लास में अर्थशास्त्र का ध्यान न रखकर उन निमंत्रणों का सानुरोध अनुमोदन करते हैं। वे 'अधिकस्य' अधिक फलम् के सिद्धांत के अनुयायी बन जाते हैं। कन्या पक्ष के लोग यदि साधन संपन्न न हो तो खातिरदारी में लड़के वाले की बराबरी करना उनको मुश्किल पड़ जाता है, विशेषकर जबकि

बारात शहर में हो। दोनो ओर यदि आर्थिक स्थिति और हृदय का उल्लास समान हो तो दूसरी बात है, फिर भी दूसरों के लिए उदाहरण उपस्थित करने का प्रश्न आता है। जो कार्य श्रेष्ठजन करते हैं वहीं कार्य साधनहीन किंतु श्रेष्ठजनों की स्पर्धा करने वाले इतर लोग भी करना चाहते हैं। इसीलिए कहीं-कहीं शादी बरबादी का कारण बन जाती है। अपव्यय को उदाहरणों द्वारा प्रोत्साहन देना और भी अक्षम्य है।

हृदय का उल्लास बुर नहीं, वह जीवन शक्ति देता है। दावतें जहां तक कि हृदय-उल्लास की द्योतक और सौहार्द की वर्द्धक होती हैं, उनका सामाजिक उपयोग होता है, वे वैवाहिक पद्धति को अग्निपूजा के समान पवित्रता और गाम्भीर्य प्रदान करती हैं, साथ ही हर्षामोद का वातावरण जो विवाह के लिए आवश्यक है, उपस्थित कर देती हैं। इन उपोयिगताओं के होते हुए भी 'अति सर्वत्र वर्जयेत्' का ध्यान रखना वांछनीय है। यदि हृदय में उल्लास है तो उसके निकास और परितृप्ति के बहुत से उपयोगी मार्ग हैं। हर समय उपयोगितावाद अच्छा नहीं किंतु उसको भुला देना एक सामाजिक अपराध है। दावतें और प्रीतिभोज किए जायें किंतु आर्थिक स्थिति का अतिक्रमण न किया जाय। विवाह एक सामाजिक और धार्मिक कार्य है, उस अवसर पर सामाज और धर्म की सेवा अत्यंत वांछनीय है, और खर्च के अनुपात में विवाहों के अवसर पर सामाजिक सेवा के लिए दान की व्यवस्था भी होनी चाहिए।

मोतियां का चूना

पूर्ण वैभव प्रदर्शन करने पर भी सुव्यवस्था रखने से मितव्ययता बरती जा सकती है। कम से कम ऐसी चीजों में न व्यय किया जाय जिनका कोई व्यावहारिक उपयोग न हो। खर्च इस व्यवस्था के साथ किया जाय कि उससे उपलब्ध वस्तुएं उस मूल्य की जांचे। गृहस्वामी के पृष्ठपोषकों को यह न कहना पड़े कि अमुक वस्तु इतने हजार रूपए खर्च करके अमुक स्थान से मंगाई गई। 'नाहिं कस्तूरिकामोदः शपथेन विभाव्यते' कस्तूरी की खुशबु कसम खाने से नहीं प्रमाणित होती। 'मुश्क आनस्व कि खुद विबोयद न कि अत्तार बिगोयद' पान में यदि साधारण चूने से लाली आ जाती है तो उसमें मोतियों का चूना लगाना आवश्यक नहीं। किसी चीज में चांदी के बरक घोट देने से खाने वाले विशेष पुष्टि लाभ करके अद्भुत पराक्रम न कर सकेंगे। वैसे तो जो कोई खर्च करता है वह उत्साह से करता है, जी जान पर खेलकर करता है, वह सराहना का पात्र है। सराहना का नहीं तो उसके साथ सहृदयतापूर्ण सहानुभूति करना तो हमारा धर्म है, किंतु धन का जहां तक सद्व्यय हो वहां तक श्रेयस्कर है तभी वैश्यों की कुल देवी लक्ष्मी जी प्रसन्न हों।

विशेष

प्रीतिभोज को इस आलोचना से दावत देने वाले सज्जन यह न समझे कि मैं उनका कृतघ्न हूँ या मैं दावते पसंद नहीं करता। मैं दावत देने वालों का विशेष रूप से आभारी रहता हूँ और निमंत्रणों से लाभ उठाने की भरसक कोशिश करता हूँ। यातायात का कष्ट, विशेषकर जब दावत निशाचरी अर्थात् रात की हो, अखरता हूँ किंतु रसना का ब्रह्मानंद और काव्यनंद सहोदर आस्वाद उस क्षति की पूर्ति कर देता है। इश्वर की दया से पेट की पाचनशक्ति तो नहीं, जिह्वा की आस्वाद शक्ति अक्षुण्ण बनी हुई है। प्रीतिभोज में परोसे हुए मिष्ठानों का सुरभित सौन्दर्य तथा पापड़ों का मारमर संगीत एवं आइसक्रीम का स्निग्ध माधुर्य आज भी मुझे आकर्षित करता है। दावतों में उदर और जिह्वा का अन्तर्द्वन्द्व उपस्थित हो जाता है। मैं भोजन भट्ट अवश्य हूँ किंतु स्वास्थ्यभीरू भी हूँ। मुझे अपने प्राणों पर दया आ जाती है। 'मा शरीरेषु दयां कुरु' का मैं पक्षपाती नहीं। इसलिए मैं कल्पना और वासना मात्र से अपनी तृप्ति कर लेता हूँ। दावत देने वाले मुझसे डरें न। हाँ इतनी अवश्य कृपा करें कि जहां वे अधिक नमक मिर्च खाने वालों का इतना ध्यान रखते हैं कि उसकी कमी की दो-दो बार पूर्ति करा देते हैं, वहां उन लोगों को मन से न भुला दिया करें जो नमक मिर्च की संन्यास सी करते हैं। ऐसे लोगों की आज संख्या कम नहीं। बलिहारी ब्लडप्रेसर की। इनके लिए शुद्ध अमिश्रित दधि श्रेय और प्रेय होगा। लेखक होने के नाते बातों में नमक मिर्च मिलाना भी जानता हूँ। किंतु खाने में उसका त्याग ही हितकर समझता हूँ।

बस आपकी शुभ संमति की कसर है !

यह बीसवीं शताब्दी काट-छाँट और लाघव का युग है। चारों ओर संक्षेपीकरण की प्रवृत्ति दिखाई देती है। पारिवारिक संबंधों को ही लीजिए। जहाँ पहले 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का पाठ चलता था, वहाँ अब 'भार्येव कुटुम्बकम्' का पाठान्तर प्रकाश में आ रहा है। प्रकृति ने भी इस संक्षेपीकरण में सहायता दी है। अब केवल पुस्तकें ही पाकेट एडिशन नहीं होती पुस्तकों के रचयिता भी पाकेट एडिशन होते जा रहे हैं। 'आकार सदृशः प्रज्ञाः' छोटे आकार के अनुकूल ही बुद्धि का भी विस्तार छोटा होता जाता है। सब पुस्तकों में डाईजेस्ट, क्विजियाँ और प्रश्नोत्तर निकलते जाते हैं। साहित्य में भी संक्षेपीकरण का तूफान आया है। महाकाव्य के स्थान में गीतिकाव्य, उपन्यास के स्थान पर कहानी और उससे भी छोटी लघु कथा, छः अकों के नाटकों के स्थान में एकांकी और एकदृश्यीय और एक पात्रीय नाटक प्रकाश में आए हैं। यह सब संक्षेपीकरण का ही फल है। आलोचना का भी एक लघु रूप प्रचलित हो गया है। उसका नाम है सम्मति और कभी-कभी उसे शुभ सम्मति के आदर सूचक नाम से पुकारा जाता है।

सम्मति लिखने वाले के लिए सुलभ और पाने वाले के लिए सुलभ! सम्मति के लिए दीर्घकाल तक प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। कभी-कभी तो घुड़-सवार सम्मति-याचक छपे हुए फर्मे लेकर उपस्थित हो जाते हैं और कहते हैं- 'इसका कवर तैयार हो गया है, उस पर आपकी शुभ सम्मति की कसर है।' उस समय सम्मति लेने वाला भी समझ लेता है कि कैसी सम्मति दी जाएगी और लिखने वाला भी समझता है कि उसे कैसी सम्मति देनी है। ऐसी आशु सम्मतियों के लिए सिद्धहस्त, कुशल और उदार सम्मति दाताओं के पास पहुँचा जाता है जो रीति कालीन कवीन्द्रों की भाँति नामों और विषयों का हेर-फेर कर तुरंत एक सम्मति तैयार कर देते हैं। कविता की बात छोड़कर यह तो प्रत्येक विषय के संबंध में प्रायः निर्विदवाद रूप से लिख दिया जाता है - "हिंदी में अमुक विषय की

बड़ी कमी है और आपकी पुस्तक ने इस कमी की पूर्ति में एक सराहनीय कदम उठाया है।” सम्मतिकार नितांत बुद्ध नहीं होते, उन्हें उस विषय के प्रामाणिक हिंदी, संस्कृत व अंग्रेजी लेखकों के नाम याद रहते हैं। यदि दोहों की पुस्तक हुई तो बिहारी और मतिराम के दोहों से, यदि कवत्ति सवैये हुए तो रसखान, घनानन्द से तुलना करदी। यदि पद हुए तो सूर और तुलसी की याद दिला दी, यदि निबंध हुए तो एडीशन, लैम्ब, स्टीवेन्सन से तुलना करदी। इसके लिए अधिक विद्वत्ता की आवश्यकता नहीं। साहित्य के किसी सस्ते और सुबोध इतिहास के सैंकिड हेन्ड एडीसन से काम चला सकता है। दो चार शब्द शैली के संबंध में लिख दिए— **“शैली सरल सुबोध है। इसके पढ़ने में उपन्यास का-सा आनंद आता है। इसमें शिक्षा के साथ मनोरंजन भी है।”** गागर में सागर भरने की बात सम्मतिकार को अधिक सिर खुजौअल से बचा देती है और लिखना हुआ तो शुभ कामनाओं में दो एक वाक्य लिख दिए। **“मुझे आशा है कि यह पुस्तक हिंदी जगत में उचित आदर पाएगी।”** बस इतने में सम्मति याचक का भंडारा भर जाता है। सम्मतिकार भी खुश होता है कि जान बची लाखों पाये। पुस्तक पढ़ने के भार से बचे। चोर गठरी ले गये, बेगारियों ने छुट्टी पाई।

सम्मति-लेखक भी बेचारा क्या करे? कितनी पुस्तकें पढ़े और कितने लेखकों के आगे अपना अज्ञान और शब्दों का दिवालियापन छिपाए। इने-गिने वाक्यों में कितनी रद्द-बदल करे और उनका कितने प्रकार से संयोजन करें! वह सब विषयों का पंडित भी नहीं होता। एक विषय में कुछ ख्याति पा ली तो सब विषयों का ज्ञाता समझा जाने लगा। आलोचक एक व्यापक शब्द है, किंतु लोग भूल जाते हैं कि आलोचना के भी कई क्षेत्र हैं। काव्य सौंदर्य का उपासक ऐतिहासिक आधारों के संबंध में उतना ही अनभिज्ञ हो सकता है जितना कि वह चंद्रलोक में होने वाले कवि-सम्मेलनो के विषय में और ऐतिहासिक आधारों की खोज करने वाला सौंदर्य की उतनी ही उपेक्षा कर सकता है जितना कि आपरेशन करने वाला डाक्टर रमणी के शारीरिक सौंदर्य की। सम्मति देने वाले को कभी-कभी तो घुड़सवार सम्मतियाचाकों के सामने ऐसे ही सम्मति समर्पित कर देनी पड़ती हैं जैसे पिस्तौलधारी डाकू के आगे अपनी सम्मति।

सम्मति संग्रह से जितनी ख्याति लेखकों को मिलती है उससे कम ख्याति देने वाले को नहीं मिलती। सम्मति देने वाले को पुस्तक तो मिलती ही है किंतु उसकी लोक एषणा की भी तृप्ति होती है। उसको सहज में ही ‘आचार्य,’ ‘विद्वद्भर,’ ‘आलोचक प्रवर,’ ‘साहित्य मर्मज्ञ’ की उपाधियां मिल जाती हैं।

बस आपकी शुभ संमति की कसर है !/ 108

बेचारे सम्मति- याचकों का भी दोष नहीं , स्वांतः सुखाय रघुनाथगाथा
लिखने वाले गोस्वामी तुलसीदास भी बधुजनों का आदर पाने की लालसा से
खली न थे-

जो प्रबंध बधु नहिं आदरहीं ।
सो स्त्रम वादि बालकवि करहीं ॥
सम्मति-याचक आपको श्रेष्ठ और विरले लोगों की श्रेणी में रख देता है-
निज कवित्त केहि लाग न नीका ।
सरस होउ अथवा अति फीका ॥
जे पर भनिति सुनत हरषाहीं ।
ते वर पुरूष बहुत जग नाहीं ॥

[सप्ताहिक हिन्दुस्तान, हास्य विशेषांक २२ मार्च १९५९]

सीमावर्ती चोर

दो प्रतिकूल छोर

जिन लोगों को रेखा-गणित पढ़ने का सौभाग्य या दुर्भाग्य प्राप्त हुआ है उन लोगों ने प्रारम्भिक परिभाषाओं में पढ़ा होगा कि रेखा वह है जिसकी लंबाई हो पर चौड़ाई न हो। चौड़ाई हीन लंबाई की कल्पना या तो गणित शास्त्र में ही संभव हो सकती है या फिर ऊँची उड़ान लेने वाले उर्दू और हिंदी के कवियों में जो नायिका की कटि की सूक्ष्मता के आगे ब्रह्म को विचारिवो सुगत मानते हैं। कहां सिकता से भी नीरस और कंकड़ो से भी कर्कश गणित शास्त्र (**गणित शास्त्र के प्रेमी मुझे क्षमा करें।**) और कहां ऊख मयूख और पियूख से भी मधुर और सरस ब्रह्मानंद सहोदर श्रृंगारिक कविता का नख-शिख वर्णन? दो प्रतिकूल छोरों के मिलने का इससे अधिक सुन्दर उदाहरण संसार में आर्कलाइट से खोजने पर भी न मिलेगा।

सीमा आक्रमण

राजनीतिक सीमाएं भी कुछ- कुछ ऐसी ही विवाद ग्रस्त हो गई हैं और इसी अस्ति-नास्ति की ओट में सुरसा के मुख की भांति अपनी सीमाओं का विस्तार करने वाले आक्रमणकारी, अपने को आक्रमणकारी के स्थान में उद्धारक, त्राता और मुक्तिदाता के भव्य और मोहक नामों से पुकारते हुए आक्रमण को वरादान बतलाते हैं। 'कोपोऽपि देवस्य वरेण तुल्यः' वे सभ्य और विकसित देशों के न्यायलयों की भांति संदेह का लाभ स्वयं अपने पक्ष में कर लेते हैं (**यद्यपि वे अपने को अभियुक्त कहे जाने से चिढ़ते हैं।**)

मेरा अभिप्राय

'सीमावर्ती चोर' से मेरा अभिप्राय 'वसुधैव कुटुम्बकम्' मानने वाले इन उदारचेता आक्रमणकारी त्राताओं से नहीं है वरन् उनसे है जो ईमानदारी और बेईमानी की फिसलन भरी सीमारेखा पर विचारकर चोर-कर्म करते हुए भी साउ बने रहते हैं। ये गोमुख व्याघ्र या 'अनजाने' व्याघ्रवृत्ति धारण करने वाले 'नामी चोर मारा जाय और नामी साउ कमाय खाय' की लोकोक्ति को सार्थक करते रहते हैं।

प्राचीन प्रशस्तियाँ

विधिवत संध लगाने वाले ही चोर नहीं होते वरन् व लोग भी इस कोटि में आते हैं जो समाज के अग्रणी और भाग्य विधायक समझे जाते हैं। वे गगनचुम्बी भव्य भवनों में निवास करते हैं और उनमें से बहुत से तो देश भक्ति और सदाचार के व्याख्यान झाड़ते हैं और कवियों द्वारा धर्मधुरीण नीति नयनागर के सम्बोधनों से विभूषित होते हैं। विष्णु भगवान की भांति उनके अनेक रूप और नाम होते हैं। **‘अनेक रूप रूपाय विष्णावे प्रभविष्णावे!’**

संध लगाने वाले चोर परिनिष्ठित कलाकार व्यक्ति होते हैं। उनकी प्रशस्ति महाकवि शूद्रक की अमर कृति मृच्छकटिक नाटक में सविस्तार गाई गई है। एक सम्मानित प्रेमी चोर की गुणगणगरिमा की गाथा चोर पंचाशिका के पचास श्लोकों में अथवा कर्पूर मञ्जरी नाटक में पढ़ने को मिलेगी। चोर पंचाशिका की बार-बार दुहराई जाने वाली पंक्ति **‘अंडगीकृतं सुकृतिनःपरिपालयंति’** चिरस्मरणीय रहेगी। भगवान कार्तिकेय के विधिवतदीक्षित उपासकों के घेरे से बाहर सीमारेखा पर जाने अनाजने फिसल जाने वाले महापुरुषों की जो अपने बचाव और संतोष के लिए युक्ति और प्रमाण खीज निकालने में कुशल होते हैं, कुछ प्रशस्तियाँ प्रस्तुत करना इस लेख का विनम्र उद्देश्य है।

काम चोर

सीमावर्ती चोरों की गणना में अग्रगण्य हैं काम चोर लोग। वे गंभीर सोच विचार और चिंतन के नाम पर काम को टालते रहने में अपने कर्तव्य की चरम सीमा समझते हैं। वे आज करे सो काल कर को तत्कालिक सुखकारी नीति को अपना काम करने के दुर्दिन को, अपने से अछूत की भांति दूर रखना चाहते हैं। उनकी सदा यही प्रार्थना रहती है, ‘या खुदा यह आफत मुझ से टाल’। वे आराम के घंटों की वैसाख जेठ के दिनों की भांति लंबे और काम के घंटों को पूस मास के दिनों की भांति छोटे देखने चाहते हैं। वे आफिस आने में समय की ढील-ढाल रखते हैं और जाते समय समय की पाबंदी का पाठ सुनाते हैं। उनका उद्घोष रहता है, काम हराम है। काम करते हैं तो खानापूरी मात्र। सुख सुविधाओं की कमी बताने में वे सहस्र जिह्वा धारण कर लेते हैं। वे आलस्य और आकर्मण्यता को परम सुख मानते हैं। वे बाबाजी के उस चले की भांति हैं जो नित्य यह प्रार्थना करता था कि गुरुजी को भिक्षा न मिले, नहीं तो लकड़ी बीनने जाना पड़ेगा।

इस वर्ग में कुछ विद्यार्थी लोग भी आते हैं जो पीछे की बेंचों पर बैठकर मनोहर कहानियों का पारायण करने में अग्रणी होते हैं और इम्तहान के दिनों में बिना समझे बूझे संभावित एवं अचूक प्रश्नों के राम बाण औषधि स्वरूप छपे-छपाये उत्तरों

को घोटा लगाने में रात को दिन बना देते हैं। वे 'या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी' की उक्ति को अक्षरशः सार्थक करते हैं।

सुविधा चोर

इसी कोटि के लोगों में सुविधा चोर भी आते हैं जो वैध सुविधाओं से अधिक सुख सुविधाओं के उपभोग के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। सरकारी वाहन, चपरासी और माली उनके निजी अधिकार की वस्तुएं बन जाती हैं। जिनको ये सुविधाएं सरकार से नहीं मिलती वे जनता जनार्दन के संमन्न वर्ग से उन सुख-सुविधाओं की पुर्ति कर अपनी साम्यवादी प्रवृत्ति का परिचय देते हैं। उनके लिए सदा कल्पवृक्ष पृथ्वी पर झुका रहता है। उनकी इच्छाएं 'फलानुमेया' रहती हैं। उनके लिए सब वस्तुएं सस्ते भाव पर मिलती हैं। बाजार के मंहगें भाव पर किसी वस्तु की परिप्राप्ति कराना निम्नवर्ग के अधिकारियों की आकार्य कुशलता प्रमाणित करती है। साहब तो आधे-पट्टे दाम चुका कर आत्मा का संतोष कर लेते हैं 'कौन मुफ्ती ली है?' और अधिकारी की खुली बेईमानी का अधिकार पत्र मिल जाता है। मांग कर चीज का इस्तैमाल करने से उनकी आत्मा विचलित नहीं होती। वे वस्तुएं तो जनता की सदभावना की प्रतीक समझी जाती हैं। सरकारी स्टेशनरी और टिकट एवं होली दिवाली के अभिनन्दन कार्ड जन संपर्क बढ़ाने के बहाने चलते रहते हैं।

टैक्स चौर

तथाकथित साधु (साउ) लोगों में भी प्रच्छन्न चोरों की कमी नहीं। उनकी चोरबाजारी तो कुख्याति प्राप्त कर चुकी है। वे लोग मुनाफाखोरी को वैश्यधर्म समझते हैं और धर्मादाय का रूपया निकाल कर अपना परलोक भी बना लेते हैं। टैक्सों की चोरी तो प्रायः सभी संपन्न लोग करते हैं, साधु लोग तो टैक्स की चोरी करेंगे ही। असली चोर तो इनकम टैक्स की बाधा से विनिर्मुक्त रहते हैं। एक चोर से मजिस्ट्रेट ने पूछा कि तुम चोरी छोड़कर और कोई पेशा क्यों नहीं करते? उसने उत्तर दिया सरकार और कोई पेशा इनकम टैक्स से मुक्त नहीं है और पेशों में तो कम्पटीशन भी बहुत है, चोरी का कंपटीशन चोरों को जेल भेजकर सरकार कम करती रहती है। इनकम टैक्स की बेईमानी के लिए करों का आधिक्य भी उत्तरदायी है। अवैध खर्चों की तो क्या वैध खर्चों की भी छूट बहुत कम मिलती है। धोखा देकर जो खर्चा वसूल कर लिया जाय वही बच जाता है। इनकम टैक्स का खर्चा ही खर्चों में शामिल नहीं होता। फिर भी चोरी को चोरी ही कहा जायगा।

साहित्यिक चोर

चोरी सम्पन्न या विपन्न वर्ग की ही बपौती नहीं वरन् राजराजस से अछूते यशोधन कवि और साहित्यकार भी इस जुर्म के जरायम पेशे लोगों में आते हैं।

आचार्य राजशेखर ने तो बनियों के साथ कवियों को भी चोरों की श्रेणी में बिठा दिया है। उन्होंने एकदम फतवा दे दिया है कि कोई कवि ऐसा नहीं है जो चोर न हो और कोई बनिया ऐसा नहीं है जो चोर न हो- 'नास्त्य चौरः कवि जनो नास्त्य चौरः वणिगजनः' (काव्यामीमासा)

कविवर केशवदास ने कवि, चोर और कामी पुरुष की समानता स्थापित करते हुए लिखा है कि तीनों ही सुवर्ण की खोज में रहते हैं। कवि के संबंध में सुवर्ण का अर्थ होगा सुन्दर अनुप्रासमय सार्थक अक्षर, चोर के सम्बंध में सोना और कामी के अर्थ में अच्छा रंग। तीनों ही सम्हाल कर चरण रखते हैं। कवि के संबंध में कविता के चरण और चोर और कामी के अर्थ में पैर, इसलिए कि कहीं पकड़े न जायें। चोर और कवि की समानता एक और बात में भी है कि वह चोरी के माल का रूप बदल देता है।

कवि और लेखक लोग बर्फी के लड्डू और लड्डू की बर्फी बहुत बनाया करते हैं। कविकुल- चूड़ामणि, गोस्वामी तुलसीदास जी भी इस कला में सिद्धहस्त थे किंतु उन्होंने ईमानदारी के साथ कह दिया है कि 'नानापुराणनिगमागम सम्मतं यद्रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि' से लेकर अर्थात् सात पांच की लाकरी से एक जने का बोझ बना लिया है। उन्होने मूल भावों को सुधारा और मांजा अवश्य है। कविवर बिहारी लाल अपने 'नावक के तीर' की भांति गंभीर घाव करने के लिए हाल सप्तशती के उपकृत हैं। उनका 'नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल' का भी प्रसिद्ध दोहा उधार लिया हुआ भाव है। सूर के 'बाहं छुड़ाये जात हो निवल जानि के मोई' में भी एक प्रकृत दोहे छाया है। यहां तक कि केशव की 'केशव केसन असि करी, जस अरिह न करहिं' की उक्ति को चाहे उन्होंने अपने असामयिक वार्द्धक्य के कारण अपनाया हो किंतु वह उनके दिमाग की सूझ नहीं है। वे भी इसके लिए प्राकृत के ऋणि हैं। इन साहित्यिक चोरों में कुछ तो भाव साम्य की शरण लेते हैं Great minds think alike कह कर कवियों के पक्ष समर्थक उनका अधमोचन कर देते हैं। बहुत हुआ तो इस बात की शरण ले लेते हैं कि मूल भाव को बहुत परिमार्जित कर दिया है कविवर बिहारी लाल की ऐसी पाण्डित्यपूर्ण बिना पैसे की वकालत स्वर्गीय पंडीत पदसिंह शर्मा ने की है। इस लेख के शीर्षक का सुझाव भी एक अंग्रेजी पुस्तक 'Pebbles on he shore' by alpha of the plugh के umbrella morals से मिला है। उसकी कुछ सामग्री भी जो उलट फेर पुस्तकों की चोरी के अधिकरणों में आई है उपयोग में आई है, यहां तक कि वह पुस्तक भी मेरी खरीदी हुई नहीं है। वह चोरी की तो नहीं, मांगी हुई न लौटाई जाने वाली पुस्तकों में से है। वह पुस्तक शायद मेरे पड़ोसी श्री नेमीचंद गोयल की है। मेरी सफाई इतनी

ही है कि शायद मैंने उसका उनसे अधिक उपयोग किया है। यह तो हरएक चोर की सफाई हो सकती है! अब हम पुस्तकों की चोरी और उलट फेर के विषय पर आते हैं।

पुस्तक चोर

पुस्तकों की चोरी नीति निपुण 'तमसे मा ज्योतिर्गमय' की प्रार्थना करने वाले विचारों के उन्नायक और प्रसारक विद्वान लोग ही करते हैं। चिराग तले अंधेरे की बात है। यह पुस्तकों की चोरी तो भारत के स्वर्ण काल में भी प्रचलित थी। 'लेखनी पुस्तक' नारी पर हस्ते गतं धन दैव इच्छासु आयाति यदि आयाति 'नष्टं- भ्रष्टं गतंगतः' यह श्लोक इस बात की ज्वलंत गवाही है।

जिस अंग्रेजी पुस्तक का मैंने ऊपर उल्लेख किया है उसमें किताबों की चोरी के बारे में लिखा है कि एक धर्मगुरु की लाईब्रेरी नीलाम हुई थी उसमें आधी से अधिक ऐसी पुस्तकें थी जो उधार लेकर लौटाई न गई थी। उन पर भिन्न-भिन्न पुस्तकालयों की मुहर थी (जब धर्मगुरुओं की यह दशा तो अस्मदादिकानां लौकिकानां का वार्ता ?) उस लेखक ने एक लाईब्रेरी निरी ऐसी पुस्तकों की ही देखी थी। मेरे पास भी कुछ ऐसी ही पुस्तकें थी जो अब दूसरों की आल्मारियों की शोभा बढ़ा रही हैं उनमें एक Keith's Sanskrit drama है। मेरी जरखरीद पुस्तकों में Croe's aesthetics प्रमुख कई पुस्तकों खोई हुई हैं। उनमें से कोई पुस्तक किसी सज्जन के पास हो तो लौटाने की कृपा करें, मैं उसको आगरा विश्वविद्यालय को दे दूंगा। किताबों के न लौटाने का कारण पुस्तक-प्रेम के अतिरिक्त आलस्य या पुस्तक से नोट न लेने की ढिलमिल प्रकृति होती है। चित्र चोर (चित चोर नहीं) और मूर्ति चोर भी इसी संज्ञा में आते हैं।

उलट-फेर

चोरी के हलके रूपों में उलट-फेर यों तूम्बा-पल्टौअल की है। तूम्बा पल्टौअल तो शुद्ध विनोद में होता है किंतु छाता पल्टौअल, जूता पल्टौअल और हैट पल्टौअल अनजाने भी होता है और जानकर भी होता है। इंगलैंड में छाता पल्टौअल और हैट पल्टौअल के रोग अधिक हैं। (उल्लिखित अंग्रेजी पुस्तक में इस विषय का एक लेख ही है) भारत में जूता पल्टौअल के उदाहरण अधिक मिलते हैं। दावतों का जूतों के तुफैल से होना प्रसिद्ध है। अंग्रेजी सभ्यता की देन मेज-कुर्सी के प्रचलन से जूता चोरी का भय कुछ कम हो गया है। मंदिरों, गुरुद्वारों और मस्जिदों आदि धर्मस्थानों में अब भी जूतों का भय लगा रहता है। जूता खो जाने का स्वप्न तो युरोप वाले भी देखते हैं। हैट और छाता पल्टौअल प्रायः शुद्ध धोखे से होता है किंतु खोजबीन करने का बहुत कम लोग परिश्रम करते हैं, खास तौर से तब जब कि बदले

में अच्छी चीज मिल गई हो। बड़े आदमी तो अपने बड़प्पन में वस्तुस्थिति को भूल जाते हैं और कभी-कभी उनके पिछलग्गू भूल से उनको गलत वस्तु दे जाते हैं (बड़े आदमियों के सौ अपराध वैसे भी माफ होते हैं) ।

एक स्वयंभू राय साहब ने तो उलट-फेर को अपना पेशा बना रखा था। वे हमेशा फर्स्ट या सैंकिड क्लास में टाट-बाट के साथ सफर करते थे। वे छोटे पूरे स्टेशनों पर उतरते थे। उनके नौकर को यह हिदायत रहती थी कि वह उनका ट्रंक न उठाकर सोते हुए दूसरे साहब का ट्रंक उठाकर बाहर निकालें। अगर साहब जग गये तो नौकर दो चार गालियां सुन लेने को तैयार रहता था। 'बदमाश कहीं का, हमारी बदनामी करता है, दीखता नहीं है, कि यह बक्स साहब का है'! इतनी बातें सुनकर वह इतना ही कह देता था कि मालिक भूल हुई। नौकर को वे सदा दान-पान से संतुष्ट रखते थे। नौकर भी दुधारू गाय की दो लेने को तैयार रहता था। ऐसी है गुणगाथा सीमावर्ती चोरों की! 'भगवतः स्वामि कार्तिकेयस्य प्रच्छन्नोपस्काः चिरायुगे भवंतुः' चोरो के आराध्यदेव भगवान स्वामि कार्तिकेय के प्रच्छन्न उपासक चिरजीवी हों।

भारतीय लेखक और मधुमेह

मधुमेह का रोग साधारण लोगों का भी होता है, पर लेखकों और बुद्धिजीवी लोगो पर, विशेषकर इस देवदुर्लभ भारत भूमि के निवासियों पर इसकी महती कृपा रहती है क्योंकि वे मधुर प्रिय होते हैं। (ब्राह्मण का अर्थ आर्य समाजी विचारधारा के अनुसार कर्मणा नतु जन्मना लगाया जाए)। यदि प्रमाण चाहिए तो लोक प्रसिद्ध ब्रह्मणानां मधुर प्रियं का प्रमाण मिल सकता है। ब्रह्मणों की मधुर प्रियता उनकी बातचीत में रसगुल्ले के रस की भांति टपकती है। वैदिक ऋषि वृहदारण्यक उपनिषद में प्रार्थना करता हुआ, आगे -पीछे दाएं- बाएं चारों ओर मधु की ही पुकार करता है-:

मधूवाता ऋतायते। मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः। मधु नक्तमुतोषसः। मधुमत्पार्थिवं रजः --मधुमानस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवंतु नः।

आदि कवि बाल्मीकि सुरम्य नगरी अयोध्या का वर्णन करते हुए वहां के निवासियों के लिए कहते हैं वहां कोई अमृष्ट भोजी नहीं है, अर्थात् कोई बिना मीठा खाने वाला नहीं है। राजपाठ धन-दारा धिक्तां च तं मदनं च इमां च मां च। कहकर त्यागने वाले सद्गृस्थ का आदर्श बताते हुए सुरपूजन के साथ मिष्ठान्नपानं को स्थान देते हैं। श्री सत्यनारायण स्वामी की कथा में शर्करा का विधान है।

देवताओं में अग्रगण्य गणनायक गजानन गणेशजी मादकप्रिय हैं, तभी वह मुदमंगलदाता बने (उपासक और भक्तगण मुझे क्षमा करें)। भगवान प्रमथेश महादेवजी हास्यरस के देवता हैं, वह और उनका परिवार सदासनातन से हास्यरस के विषय बने हुए हैं। भोजनों को मधुरेण समापयेत् का ही आदेश है। आलंकारिक रूप से भी मधु और मधुर का ही साम्राज्य है। मधुरस शृङ्गार को ही रसरज माना गया है। कविगण माधुर्यगुण की ही विशेष परवा करते हैं और रूप माधुर्य के तो गीत गाते नहीं थकते। कवि लोग तो जिह्वा का स्वाद बदलने के लिए मधु का प्रत्यक्ष रूप से भी पान करते हैं और साधारणीकरण की प्रक्रिया द्वारा योग की मधुमती भूमिका में तो विचरते ही रहते हैं। 'विश्वास न हो तो साहित्यालोचन के

पन्ने पलट देखिए' कवियों और दार्शनिक के लिए तो 'सर्वे खल्विदं ब्रह्म' की बजाय 'सर्वे मधुमयं जगत्' का पाठ हो गया है। तभी तो कवि और साहित्यिक लोग विशेष सुविधाओं की मांग करते हैं।

यह सर्वे मधुमयं जगत् का ही प्रभाव है कि अधिकांश भारतवासी मधुमेह रोग से ग्रस्त होते हैं। पहले श्री गणेशजी से ही श्री गणेश कीजिए। उनको मधुमेह होने के दो प्रबल प्रमाण हैं। वह मोदकप्रिय तो हैं ही वे '**(कपित्थ जम्बूफल चारुभक्षणम्)**' भी हैं। कैथा और जामुन मधुमेह की परीक्षित औषधियां हैं। उनके पूज्य पिता देवाधिदेव महादेव दिन रात विल्व पत्रों का सेवन करते रहते हैं और उनकी तृष्णा बुझाने के लिए निरंतर अभिषेक होता रहता है। तृष्णा मधुमेह का एक विशेष लक्षण है और विल्वपत्र मधुमेह की औषधियों में प्रमुख है।

विष्णु भगवान क्षीर सागर में इसीलिए शयन करते हैं कि दुग्ध की हर समय उपलब्धि हो सके। दुग्ध मधुमेह के लिए पथ्य है। पितृगणों की तृप्ति जौ और तिल के साथ उदक (**पानी**) पाए बिना नहीं होती, इसलिए हिंदु जीवन में पुत्र का महत्व है। भारत के सब देव और पितृगण इस रोग से पीड़ित रहते हैं। फिर उनके उत्तराधिकार में भारतवासी लेखकों को यह रोग क्यों न प्राप्त हो? सरकार को भी चाहिए कि कपित्थ, जम्बूफल और विल्वपत्रों की उपज बढ़ाने का उपाय करे।

हस्ताक्षर या ब्रह्माक्षर

पुराने जमाने की बात हम नहीं कहते, लेकिन जबसे “कादर मन कर एक सहारा दैव-दैव आलसी पुकारा” – वाला पुरुषार्थी लक्ष्मण का सिद्धांत दुनिया में प्रचलित हुआ है, तबसे बूढ़े विधाता के अक्षरों का महत्व कुछ जाता रहा है। विधाता का भले ही कम हो गया हो, अक्षरों का महत्व हरिर्गज कम नहीं हुआ। आज तो हस्ताक्षरों की महिमा अपरम्पार है।

कहते हैं कि ब्रह्मा के अक्षर अदृष्ट होते हैं, पढ़े नहीं जाते। जब दिखाई ही नहीं देते, तो न पढ़ जा सकने में क्या बड़ाई? हस्ताक्षर तो दिखाई देते हैं पर क्या आप दावे से कह सकते हैं कि उनको आप पढ़ सकते हैं। इन टेढ़ी-मेढ़ी असुन्दर, अपठनीय रेखाओं के पीछे कितने विविध व्यक्तित्व छिपे हैं, कितना चिन्तन, कितनी शक्ति निहित है, क्या कोई आँक सकता है? जी हां, आप कितने भी सामान्य अपने को क्यों न समझें, चुनाव के अवसर पर आपके हस्ताक्षरों में भी असीम शक्ति उत्पन्न हो जाती है!

पहले जमाने में जबान से बात पक्की हो जाती थी, किन्तु आजकल जबान की बात का कोई ठिकाना नहीं। आज तो पत्थर की लकीर की भांति अमिट हस्ताक्षर ही काम आते हैं- रसीद लिख दी ताकि वक्त पर काम आवे। रसीद भी बिना हस्ताक्षर के काम नहीं आती। प्रमाण पत्र भी बिना हस्ताक्षर के प्रमाण पत्र नहीं होते। सही को सही प्रमाणित करने और कटे हुए को कटा हुआ प्रमाणित करने के लिए भी हस्ताक्षर का बड़ा सा छोटा रूप चाहिए।

हस्ताक्षर ब्रह्मा के कर्माक्षरों की भांति व्यक्ति के भाग्यविधाता होते हैं। वे बात की बात में फलदायी होते हैं। पलक झपकते ही रंक को राजा और राजा को रंक बना सकते हैं। गाउनधारी जज के हस्ताक्षर से ही अपराधी के गले में फांसी का फंदा डालकर उसे लटकाया जाता है, या फिर उसी के हस्ताक्षर से वह निर्दोष प्रमाणित

किया जाता है। हजारों की चैक दस्तखतों बिना, कौड़ी का भी मूल्य नहीं रखती। हस्ताक्षर जीवन काल में ही काम नहीं देते वरन् धर्म की भांति मरणोत्तरकाल में भी काम देते हैं। हस्ताक्षरों से ही वसीयतनामे की सार्थकता होती है। बिना हस्ताक्षरों के लाभार्थियों के सुखस्वप्न मिट्टी में मिल जाते हैं। दस्तखतों बिना कोई करारनामा पक्का नहीं होता। अदालत का हुकूम हस्ताक्षरों बिना हुकूम की सार्थकता नहीं रखता। परीक्षाफल भी दस्तखतों के बिना विलम्बित हो जाता है। दानपत्र भी हस्ताक्षरों बिना अधूरे रहते हैं। संसद के विधेयक पास हो जाने पर राष्ट्रपति के हस्ताक्षरों की अपेक्षा रखते हैं। राष्ट्रों के सन्धिपत्र भी प्रतिनिधियों के हस्ताक्षरों बिना कोई मूल्य नहीं रखते।

लाल फीते का शक्ति स्रोत

वास्तव में हस्ताक्षर अधिकारी के अधिकारों को सार्थकता प्रदान करते हैं। हस्ताक्षर यद्यपि लाल फीते को और भी मजबूत और लम्बा बनाने में सहायक होते हैं- बहुत से जरूरी हुकूम हस्ताक्षरों के बिना महीनों लटके रहते हैं। तथापि वे अधिकारी को अपने लिखे में संशोधन और उलट फेर करने तथा उसके द्वारा अपने अधिकार की घोषणा करने और सार्थकता प्रमाणित करने का अवसर देते हैं। यह माना कि बहुत से दस्तखत आंख बन्द कर किये जाते हैं, किन्तु कभी-कभी हस्ताक्षरों की दीर्घ सूत्रता से लाभ हो जाता है। कितने ही जाली चैक बैंक मैनेजर के हस्ताक्षरों के समय छानबीन के कारण भुनने से बचे होंगे। दस्तखतों की देरी के कारण न जाने कितने महत्वपूर्ण निर्णय बदले होंगे और उससे कितनो को लाभ पहुंचा होगा।

हस्ताक्षरों का अमोल मोल

हस्ताक्षरों में व्यक्ति का व्यक्तित्व भरा रहता है। फोटोग्राफ तथा अंगूठे के निशान की भांति हस्ताक्षर में भी व्यक्ति के व्यक्तित्व का कुछ अंश उतर आता है। नकली दस्तखत बनते अवश्य हैं, किन्तु वे विशेषज्ञों की पैनी निगाह की पकड़ में आ जाते हैं। कलम की नोक पर नाचती हुई स्याही की धारा के साथ व्यक्ति का व्यक्तित्व उतर आता है। मेरे हस्ताक्षर मेरे ही होते हैं। व्यक्तित्व सम्बन्धी इसी मूल्य के कारण हस्ताक्षर संग्राहकों की, बड़े आदमियों के चारों और, भीड़ सी लग जाती है। आवाज के रिकार्ड के लिए हर एक आदमी के पास साधन नहीं, किन्तु व्यक्तित्व का रिकार्ड नोट बुक पर थोड़े से प्रयत्न से हो जाता है। आदमी चला जाता है, चित्र की भांति हस्ताक्षर अमर रहते हैं। हस्ताक्षर प्रायः बिना मूल्य के मिल जाते हैं, किन्तु

कोई कोई महानुभाव किसी सत्कार्य के लिए अंशदान लिए बिना उन्हें नहीं देते। महात्मा गांधी हस्ताक्षर करने से पूर्व हरिजन फंड के लिए 8 रूपये लेते थे। बर्नार्ड शा के सम्बन्ध में जनश्रुति है कि उनका घरेलू सामान बेचने वाला मोदी उनके चैक कभी नहीं भुनाता था। वह उन दस्तखतों को बेचकर और अपने प्राप्य धन से कहीं अधिक कमा लेता था।

आपके दस्तखतों का भी मूल्य है। आप भी अपने हस्ताक्षरों को सस्ता न बनाइये। दस्तखत करने से पूर्व जिस कागज पर आप दस्तखत करें उसे ध्यान से पढ़ लीजिए और सोच लीजिए। जब तक दस्तखत नहीं करते तब तक चीज आपकी है, फिर तीर हाथ से निकल जाता है। आप सोच लीजिए कि अपनी कलम से किसी का जी तो नहीं दुखा रहे हैं अथवा किसी के साथ अन्याय तो नहीं हो रहा है। हो सकता है कोई आपको धोखा दे रहा हो। हस्ताक्षर सावधानी बरतने के लिए सिग्नल है।

[धर्म युग , मई १९६१]

पृथ्वी पर कल्पवृक्ष

यद्यपि एक कल्पवृक्ष कार्यालय उज्जेन में है, तथापि अखबारों के विज्ञापनों के रूप में अनेकों कल्पवृक्ष नित्य अपने काले अक्षरों की मौन मुखर भाषा में आपको अपनी ओर आकर्षित करते रहते हैं। आपकी कोई भी समस्या हो आजकल के विज्ञापन उसको हल करने को तैयार है। आपको धन की इच्छा हो क्रासवर्ड पजिल पढ़िए, 'सुगमवर्ग' पहेलियों को अध्ययन कीजिए। यदि आप में योग्यता कम है तो ऐसे कोष हैं जो उनके हल करने में आपकी सहायता देंगे। कुछ ऐसे अखबार भी हैं जो आपको गढ़े गढ़ाये सुझाव दें देगे। लेकिन एन्ट्री फीस देने के लिए रूपया चाहिए। पैसा पैसे को खीचेंगा, किन्तु दुर्भाग्यवश विज्ञान यह बतलाता है कि गुरुत्व की ओर आकर्षण होता है, जहां बहुत होता है, थोड़ा वहीं जाता है। फिर भी भाग्य होगा तो लक्ष्य वेध हो ही जाएगा। "कबहूँ तो दीनदयाल के भनक पड़ेगी कान"। एक हल ही निकल जाय तो उमर भर बैठे रोटियां खाइए या दुनिया की सैर कीजिए। यदि आप कुछ कम पढ़े लिखे हैं और सट्टे से धन कमाना चाहते हैं तो ज्योतिषियों की फर्म आपकी सहायता करने को तैयार हैं। अचूक तीर लगेगा। यदि आप डाक्टरी करना चाहे तो आपके लिए ऐसे स्कूल नहीं, कालेज तैयार हैं जो आपको उनकी पुस्तकों का मूल्य देने पर एम डी की पदवी सहर्ष प्रदान कर देंगे।

यदि आप अपने भाग्य के साथ बच्चों का भाग्य भी सुरक्षित करना चाहते हैं तो बीमा कंपनियों के विज्ञापन पढ़िए। वे एक से एक अधिक सुविधा देने की प्रतिस्पर्द्धा करती दिखाई देंगी। बस प्रीमियम देने को जबरदस्ती की बचत करने की क्षमता होनी चाहिए। मेरी तरह से भग्यहीन न हों कि जब प्रीमियम देने का रूपया न था तब सहज में बीमा हो गया, किंतु प्रीमियम न चुका सका, और जब रूपया हुआ तब तक शरीर रोगों का अड्डा बन गया और ओरियंटल ने बीमा लेने से इन्कार कर दिया। घाटे में बीमा कंपनी ही रही क्योंकि मैं साठ से आठ वर्ष ऊपर हो गया। मैं यही सब से बढ़कर बीमा समझता हूँ और ईश्वर को धन्यवाद देता हूँ कि पेंशन तो

मिल ही जाती है। इसीलिए जब अदालत में मुझे से पूछा जाता है तब मैं कह देता हूँ कि जिंदा रहने ही मेरा पेशा है क्योंकि मुझे केवल जीवित रहने मात्रा से पेंशन मिल जाती है। एक कंपनी, जिसने मेरे रोगग्रस्त होने पर भी मेरा बीमा किया उसका दिवाला निकल गया। अस्तु,

यदि आपके पास धन है संतान नहीं तो वैद्य लोग आपको मनचाही संतान देने को तैयार हैं। वे लोग वरदान देने में देवतओं से भी एक कदम आगे रहते हैं। अखबारी वैद्य भगवान शंकर की भांति आशुतोष होते हैं। अधिक तपस्या की आवश्यकता नहीं होती। तीन पैसे का कार्ड और पांचवें दिन वी.पी.पी. के दाम सकाम होकर भी निष्काम बने रहिए। **‘कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन’**। यदि आप अतिवृष्टि की भांति बहु-संतान को ईति-भीति समझने लगे हों (पहले जमाने में पुत्र-जन्म की प्रसन्नता हर्ष का आदर्श मानी जाती थी। प्राचीन ग्रन्थों में लिख हे कि यदि कोई सूत्रकार एक अक्षर की बचत कर लेता था तो उसे पुत्र-जन्म की प्रसन्नता होती थी। अब वे दिन हवा हो गये)। यदि आप अपनी देवी जी के स्वास्थ्य की रक्षा करना चाहते हों या बच्चों की टें-टें पें-पें से अपनी सुख निद्रा भंग न करना चाहते हों, अथवा यदि आपके हृदय में वात्सल्य का स्रोत सूख गया हो और शिशुओं के धूल भरे अंगों से अपने धवल-धौत कपड़े और कमरे के फर्श को धुल-धुसरित न करना चाहें तो गर्भ निरोधक साधनों और औषधियों की कमी नहीं। अखबर क्या, सड़क किनारे की दीवारें आपको अमुक वैद्य या वैद्या की अचूक औषधि से लाभ उठाने का निमंत्रण देंगी।

यदि धन बचाते-बचाते आपकी पाचन शक्ति कम हो गई हो और यदि धन के अभाव से खाना आपको नसीब न होता हो तो **‘पेट भर भोजन कीजिये’** का विज्ञापन आपकी आश्वासन देने के लिए राष्ट्र भाषा के प्रायः प्रत्येक अखबार में मिल जायगा। **‘गैस हर गोलियों’** आपके पेट की गैस को इस सफाई और वीरता के साथ हर ले जायेंगी, जिस सफाई से दिल्लीपति पृथ्वीराज संयोगिता को हर ले गये थे।

यदि आपको कोई भी रोग हो, जीवन से निराश हो गये हो, अस्पताल के डाक्टरों और आयुर्वेदाचार्यों ने जवाब दे दिया हो, धन्वन्तरि के अवतार हकीम जी के विज्ञापन आपको बतलायेंगे कि वे आपके नगर के अमुक होटल में **‘लोकानुग्रह कांक्षया’** पन्द्रह दिन और ठहर गये हैं, इस स्वर्ण अवसर को न चूकिए। गया वक्त फिर हाथ आता नहीं। किंतु होता क्या है कि वे आपकी पुनीत सेवा के लिए अपनी नगर स्थिति के काल में सदा वृद्धि करते रहते हैं और आप भी यदि स्वास्थ्य लाभ के

सस्ते रास्तों में विश्वास करने वाले हैं तो बूर के लड्डुओं की भांति आप खायेंगे तो पछतायेंगे और न खायेंगे तो भी पछतायेंगे।

खैर स्वास्थ्य की बात जाने दीजिए। आपके दुश्मन अस्वस्थ हों (**इसलिए कोई न कोई दुश्मन अवश्य बनाये रखिये**), यदि 'श्रवण समीप भये सित केसा' से आगे बढ़कर बालों की सफेदी ने शिरोदेश पर आक्रमण कर दिया हो और यदि धनवान होने की निशानी खल्लाटता ने भी आपको अपना शिकार बना लिया हो तो नाना प्रकार के खिजाब और हेयर लोशन आपकी सेवा को तैयार मिलेंगे। इसमें अंग्रेजी अखबार हिंदी अखबारों के भी कान काटते हैं। आपको खल्लाट और 'पलितं मुण्डम्' वाली विचित्र खोपिड़ियों की कई श्रोणियों की तसवीरें मिलेंगी। आपके बाल काले और सर भरा हो जायगा और आपको केशव की भांति पछताना न पड़ेगा- 'केशव केसन अस करी जस अरिहू न करायें। चन्द्र वदनि मृगलोचनि बाबा कहि कहि जायें'। यदि आप अपने मुखमंडल पर बिना पानी और बीज के उगने वाली खेती पर विजय न पा सकतें हैं और काफी चुस्त और चेतन्य न दिखाई पड़ते हों तो **shavex** क्रीम और **seven o clock** की सहायता लीजिए, तुरंत आपकी पदवृद्धि हो जायेगी। क्लर्क से सुपरिटेन्डेंट बना दिये जायेंगे और किसी सिफारिश, या विशेष परीक्षा पास करने की आवश्यकता नहीं। आपके अभ्युदय का इससे सुलभ उपाय क्या हो सकता है ?

यदि आपका लड़का क्रिकेट या फुटबाल में 'कैप्टन नहीं बन सकता तो उसे विटामिन विशिष्ट 'डालडा' घी का पकवान खिलाइए और यदि आपके घर की कोई देवी नृत्य कला विशारद है तो उसी 'डालडा' का प्रयोग करने पर एक नई स्फूर्ति का स्रोत मिल जायगा और वह कहेगी कि मेरी तबियत यही चाहती है कि रात भर नाचती रहूँ। आपकी देवी जी की पाक विद्या की प्रशंसा नहीं होती तो 'रथ' वनस्पति का प्रयोग कराइए। 'पकाउ' तो दाम भी कम और अल्प मात्रा में ही बड़ी मात्रा का काम निकाल देता है।

यदि दफ्तर में आपको सुस्ती के लिए डाट-फटकार मिलती है तो 'हारलिक्स माल्टेड मिल्क' पीजिए, डाक्टर भी आपको यही सलाह देगा। फिर फटकार के स्थान में शाबाशी मिलने लगेगी और पद-वृद्धि भी हो जायेगी।

यदि आपके कपड़े धोबी के यहां सुकड़ जाते हैं और बदन पर छोटे होने लगते हैं और आप अनावश्यक रूप से मोटे लगने लगते हैं तो 'sanforized' कपड़ा खरीदिए। उसके खरीदने पर आग्रह कीजिए, नहीं तो पछताइएगा। दर्जी के यहां का **shrinking** काम न देगा।

यदि आप आफिस को लेट हो जाते हो तो अमुक कंपनी के यहां से घड़ी दुरूस्त करा लीजिए। एक सैंकिड के पचासवें हिस्से का भी अंतर न पड़ेगा और समय पालन में अग्रगण्य हो जायेंगे। घड़ी को तो सहज में ठीक करा लेंगे किंतु देरी के और कारणों पर भी विजय पाना होगा। कभी ईंधन गीला, तो कभी आटा ढीला और कभी नौकर देर से आया। कभी घड़ी में चाबी ही देना भूल गये तो बस आलस्य पर विजय पाने की कोई औषधि भी घड़ी के साथ दे दी जाया करे, तो मैं भी एक घड़ी खरीद लूँ।

यदि आप अपनी देवी जी को दिन रात प्रसन्न रखना चाहें (**चाहे घर में चूहे एकादशी करते हों**) तो 'हिमालय बुके पाउडर्स' का उपयोग कीजिए। विज्ञापन के साथ छपा हुआ घड़ी का डायल आपको सुबह, दोपहर और रात तीनों कालों की गारंटी दे देगा। यदि आप गर्मियों में भी पूर्ण स्फूर्ति के साथ काम करना चाहें तो 'रूह अफजा' का एक गिलास पी लीजिए- 'भरपूर गर्मियों में भी मेरा परिश्रम थकावट से अछूता रहता है'। आप शायद ही उतना परिश्रम करते हों किंतु फिर भी यदि आप उसे पी लिया करें तो पखां और रिफ्रीजरेटर का खर्च बच जायेगा। इश्तहार वाले आपके लिए पृथ्वी पर स्वर्ग अवतरित कर रहे हैं फिर भी आप उनके परामर्श से लाभ न उठावें तो आपके लिए गोस्वामीजी के शब्दों में कहना पड़ेगा।

'मूरख हृदय न चेत, जो गुरू मिलें विरंच सम।'

[छ: वर्ष के किसी होलीकांक में]

शीर्षकहीन लेख

जब शीर्षकहीन रूप रणकौशल दिखा सकते हैं तब शीर्षकहीन लेख भी चल सकता है। शीर्षक देने से नदी के कूलों की भांति क्रम और संगति के बंधनों में बंधना पड़ता है। आजकल स्वतंत्रता के युग में उन्मुक्त सौंदर्य की ही प्रशंसा होती है। अंग्रेजी शब्द 'एसे' के मूल अर्थ में प्रयत्न और बंधनहीनता का बोध होता है। इसको आचार्य जानसन ने 'लूज सैली ऑव दी माइन्ड' अर्थात् मन की उन्मुक्त उमंग कहा है। उस अर्थ में इसका शीर्षकहीन ही होना श्रेयस्कर है। इसलिए निबंध में बंधन का भाव मुख्य है और आजकल का युग बंधनों के विरुद्ध है।

जहां हास्य की हर रोज होली रहे और ज्ञान की हर रात दिवाली रहे वहां दीपावली के विशेषांक की बात कुछ बेतुकी सी लगती है। किंतु बेतुकापन ही तो हास्य की जान है। 'सुधा सराइअ अमरता गरल सराइअ मीचु'। हास्य की भी कभी-कभी ऊब हो जाती है इसी ऊब को मिटाने के लिए मैंने आरम्भ में निबंध की परिभाषा की चर्चा करदी। पाठक मुझे क्षमा करेंगे। यहां पर हास्यलेखक पर आलोचक रूप ने विजय पाई।

आजकल दिल्ली क आकाशवाणी केंद्र से प्राय हर मास 'परियायों की खोज' नाम की चर्चामाला प्रसारित होती है। प्राय इसलिए लिख दिया कि हरमास में उसे नियमित रूप से सुन नहीं पाता। दृष्टिसृष्टवाद ('सीईग इज विलीविंग')के अनुसार मेरे लिए उसका अस्तित्व नहीं के बराबर है। मैंने भी लेख के शीर्षक की खोज में प्राय: दो घंटे बिताये। जग माता सीताजी के सौंदर्य वर्णन की भांति 'सब उपमा रही जुठाई' सब शीर्षक भी जुटे पड़ गये हैं। नवीनता की धुन में कविता में तो प्रयोगवाद चल पड़ा है। उसमें छिपकली नहीं छिपकली जैसी विषयों पर कविताएं लिखी गई हैं। मैंने भी छिपकली पर लेख लिखना चाहा। छिपकली के संबंध में मेरे मौलवी साहब ने एक फारसीप्रिय लाला जी की कथा सुनाई थी। वे छिपकली को 'पौशीदा गुन्ची' कहते थे। और एक अंग्रेजी प्रिय बाबू साहब कमबल (कम्बल) को 'लिटिल स्ट्रेंथ की संज्ञात देते थे। छिपकली के बारे में मुझे

किसी ने यह भी बताया था कि उसकी पूछ थोड़े खीचनें पर अलग हो जाती हैं। अहिंसावादी होने के नाते मैंने उसका व्यावहारिक प्रयोग तो नहीं किया था किंतु एक उपमा में अवश्य प्रयोग किया था। छिपकली के बारे में यह भी मालूम था कि वह सांप की भांति अंडज है। इसके अतिरिक्त मैं छिपकली के बारे में और कुछ नहीं कह सकता था। इसीलिए स्वर्गीय प्रेमकली की भांति छिपकली की भी गुण- गरिमा गाथा अधखिली ही रही- **‘याही सो अधखिली रही यह प्रेम कली है’**। इसलिए वह लेख आलसी के मनोरथ की भांति निष्फल ही रहा।

बादल की भांति बहुत से विषय मेरे मानस गगन में उठे **‘बादल से चले आते हैं मजमूं मेरे आगे’** किंतु वे उन बादलों में सिद्ध न हुए **‘जे वृष्टिभिराद्रियंते’** वे बिना बरसे ही विलीन हो गये। विषय के चयन में मेरी स्वाभाविक अनिश्चयता और दीर्घसूत्रता और भी बाधक हुई। दीर्घसूत्रता सब पक्षों के साथ न्याय करने का दूसरा नाम है। विषय के निर्णय करने में कम से कम उतनी ही देरी लगती है जितनी कि आजकल के बाबू लोगों को सूट के कपड़े के निर्णय में। विषय के चयन में इससे भी अधिक देर लगती है। कपड़े के चयन में तो फैशन भी काम करता है किंतु लेख के चयन में नवीनता चाहिए। इसी उधेड़बुन में मुझे नींद नहीं आयी। अनिद्रता का मुझे पुराना रोग है। जवानी में तो एक बार नींद के पीछे नौकरी छोड़ने को तैयार हो गया था लेकिन आजकल अनिद्रता को बुढ़ापे की देन के रूप में उन कारणों पर प्रकाश डालने की न योग्यता है और न उसमें कोई तुक है। हास्य प्रधान लेख में गंभीर विवेचना पाप है।

आजकल अनिद्रता कारण की अपेक्षा नहीं करती। बिना कारण ही जब उसका प्रयोग होता है तब यदि चिंतन की का कोई विषय मिल जाय तो **‘करेला कडुए और नीम चढ़े’** की बात हो जाती है। चिंता के विषय तो अनगणित हैं। पारिवारिक चिंताओं से उदासीन तो नहीं रहता किंतु उनमें टांग अड़ाना मैं अपने मानसिक स्वास्थ्य के लिए श्रेयस्कर नहीं समझता, वे अपने आप ही भली प्रकार सुलझा जाती है किंतु यदि कोई लेख लिखना हो तो लोकैषणा और वितेषणा जिनसे मैं इस अवस्था में भी मुक्त नहीं हुआ हूँ, अपना बल प्रदान कर मेरी लेख लिखने में चिंता को प्रबल कर देती हैं। लेख बिना मानसिक पूर्वाभ्यास किये लिखा नहीं जाता। रात्रि का समय जब सब लोग सोते होतों हैं, इस पूर्वाभ्यास के लिए सबसे अनुकूल होता है और सहज में संयमी होने का मुझे श्रेय मिल जाता है, किंतु निद्रा जहां भंग हुई वहां वह फुटे मिट्टी के घड़े की भांति जुड़ती नहीं हैं। निद्रा देवी का मान मानिनी नायिका के गुरूमान से भी गुरूतर होता है। मेरे साथ रतजगा करने में बेचारी सहधर्मिणी की भी सहधर्मिणी-धर्म निभाने की सीमाएं रहती हैं। उस

बिचारी को रात के पूर्वार्द्ध में नींद नहीं आती, मुझे उत्तरार्द्ध में, फिर भी वह अपनी जागरण शक्ति के अनुरूप साथ देती है। यदि कोई धर्म की भांति साथ देने वाली चीज है तो वह दिन-रात टिक-टिक करने वाली दीवाली की घड़ी। संस्कृत शब्दों को कल्पवृक्ष कहा गया है। वे मनचाहा अर्थ दे सकते हैं। घड़ी भी मन की भावना के अनुकूल जय शिव, जय श्री कृष्ण, और हिंदुस्तान और पाकिस्तान की ध्वनि करती है। 'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी' रक्त चाप के ऊपर विजय प्राप्त करने के लिए पद चाप का सहारा लिया जाता है। बाल्यकाल का मूलमंत्र 'आजा री नींदरिया भोर कटेगी तेरी मूँडरिया' भी विफल सिद्ध होता है तब धर्म भी भंति एक थ्योगार्डिनल या सर्पीना की गोली रामबाण का काम करती है (मैं एटमबम या हाईड्रोजन बम्ब की उपमा दे देता किंतु महात्मा गांधी के शांति प्रधान देश में एटम बम्ब का नाम लेना पाप है)। जय हो उनके आविष्कर्ताओं की।

या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता।

नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, ॥

यात्रा सम्बन्धी

बौद्ध कला के प्रहारी साँची के स्तूप

बौद्ध धर्म ने जहां समता, करुणा, मैत्री के मानवीय भावों का प्रचार किया है, वहां भारतीय कला की अभिवृद्धि में सराहनीय योगदान किया है। अजंता, सारनाथ, भारहुत आदि स्थान बौद्ध कला के ही कारण जगद्विख्यात हैं। साँची भी उन्हीं स्थानों में से एक महत्वपूर्ण स्थल है। बौद्धकला का यह स्थान भोपाल के, जहां मैं संन्यासी न होते हुए भी चतुर्मास बिता रहा हूँ, निकट होने के कारण मेरे लिए कुछ सुगम है, नहीं तो मुझ जैसे प्रवास-भीरू व्यक्ति के लिए इन स्थानों का चित्र दर्शन ही सम्भव है।

साँची का प्राचीन नाम 'काकनाद' था। वह भोपाल से बयालीस मील दूर है। मार्ग उतार-चढ़ाव और घुमावदार होता हुआ भी, यदि मोटर सुलभ हो तो डेढ़ घंटे से अधिक नहीं लेता। क्षितिज रेखा की निकटवर्ती शैल श्रृंगमालाएं अपनी मनोरमता के कारण यात्रा को और भी सुखद बना देती हैं। वैसे साँची के लिए 'भिलसा' स्टेशन है और अब स्वयं साँची भी स्टेशन हो गया है, किंतु वहां पर फर्स्ट क्लास के भाग्यशाली यात्रियों के लिए ही मेल और मेल एक्सप्रेस गाड़ियां रूकती हैं। पैंसिंजर गाड़ियां स्वयं ही वहां ठहरती हैं। स्टेशन स्तूपों से आध मील दूर पर ही, लेकिन बहुत से लोग भोपाल से ही मोटर द्वारा जाना पसंद करते हैं।

यद्यपि साँची का बुद्ध भगवान की जीवन संबंधी घटनाओं से कोई सीधा संपर्क नहीं है, तथापि विदिशा नाम की प्राचीन और संपन्न नगरी के निकट होने तथा धरातल से उठी हुई अपनी अपेक्षा कृत ऊंचाई प्रायः 300 फुट के कारण इसे भगवान बुद्ध और उनके प्रमुख शिष्यों के अस्थ्यवेषों के अश्रय स्थान बनाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। विदिशा में सम्राट अशोक की सुसराल होने के कारण उसके निकटवर्ती स्थानों का महत्व था। इसके अतिरिक्त साँची की सुरम्भ शान्तिमयी प्राकृतिक स्थिति के कारण बौद्ध भिक्षुओं और भिक्षुणियों के लिए यह एक आदर्श स्थान था। यहां की निसर्ग शोभा आध्यात्मिक मनन और चिंतन के लिए विशेष अनुकूल है। पहाड़ी पर खिन्नी के पेड़ों के फलस्वरूप लघुकाय धोए-धोए पत्तों की

स्निग्ध शीतल छायां तथा स्थान-स्थान पर चट्टानों को फोड़ते हुए और अपनी आदम्य जीवनी शक्ति का परिचय देते हुए हरित तृणों एवं लतागुल्मादि की हरियाली बड़ी रममण्यी है। बड़ी-बड़ी सपाट शिलाएं और चटानें यात्रियों के लिए विश्राम स्थल का काम देती हैं। उनको देखकर कविकुल चूड़ामणि गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा चित्रकुट के सम्बन्ध में लिखी हुई रामचरित मानस की निम्नोद्धृत चौपाई याद आ जाती है-

सुन्दर सिला सुखद तरू छाहीं।

जाइ बरनि बन छबि केहि पाहीं ॥

ऊँचाई से नीचे की ओर दृष्टिपात करने से सारा दृश्य एक हरा भरा उद्यान सा दिखाई पड़ता है। सम्राट अशोक ने इस स्थान में रूचि ली, इसके प्रमाण स्वरूप यहां पर अशोक सतम्भ के भग्नवशेष मिलते हैं। इसका चार शेरों वाला शीर्ष भाग स्थानीय संग्रहालय देखा जा सकता है। ये शेर संख्या में तो चार हैं, किंतु जिधर से देखो उधर से तीन ही दिखाई पड़ते हैं। सिंह शौर्य, चतुर्दिक जागरूकता और स्फूर्ति के प्रतीक हैं। सारानाथ के स्तम्भ शीर्ष में चक्र भी हैं।

साँची की कला में दो शताब्दी ईसा पूर्व से लगाकर तेरहवीं शताब्दी तक के विकास के चिन्ह परिलक्षित हैं। साँची के स्तूपों के निर्माण और इनकी मरम्मत में धनकुबेरों और कारगिरों के वैयवितक दान के अतिरिक्त सम्राट अशोक, शुंग और सातवाहन राजघरानों का भी हाथ रहा है। इनका निर्माण क्रमशः हुआ है और इनके कई संस्करण हुए हैं। ईंट चूने के बाद पत्थर को स्थान मिला है। इनके कई तोरण और वेदिकाएं लकड़ी की कला के परिचायक हैं। संभव है कि ये पहले लकड़ी के ही रहे हों, किन्तु यह अवश्य है कि इनमें लकड़ी की कला पत्थर में उतार दी गई है। प्रायः छह सौ वर्ष की उपेक्षा और विस्मृति के पश्चात् जनरल टेलर ने इन भग्नावशेषों की ओर विद्वत्मंडली और जन साधारण का ध्यान आकर्षित किया। सन् 1821 में मेजर कोल ने इन स्मारकों की मरम्मत और संरक्षण का काम अपने हाथ में लिया।

साँची में प्रसिद्ध स्तूपों के अतिरिक्त उनसे सम्बन्धित मन्दिर और बौद्ध भिक्षुओं के विहारों (मठों) के भग्नावशेष भी हैं। ये स्तूप संख्या में तीन हैं। स्तूप नम्बर एक में भगवान बुद्ध की अस्थियों के कुछ अंश सुरक्षित हैं। इस विशालकाय ठोस गुम्बज के (व्यास एक सौ बीस फुट और ऊँचाई पैंतालीस फुट) शीर्ष भाग के ऊपर नीचे तीन छातों की छत्रावली दिखाई पड़ती है। छाते राजचिन्ह होने के अतिरिक्त संरक्षण के प्रतीक हैं। यह छत्रावली एक चौकोर वेदिका से, जिसे हर्मिका कहते हैं, घिरी हुई है। गुम्बज के चारों ओर ऊँची उठी हुई छत का परकोटा है।

जिसे परिभाषिक शब्दावली में 'मेधि' कहते हैं। इस पर एक जीने द्वारा, जिसमें एक वेदिका लगी हुई है, पहुंचा जाता है। यह जीना दक्षिण द्वार की ओर है। मेधि एक प्रकार की ऊपरी परिक्रमा है। नीचे की ओर परिक्रमा के लिए पत्थर के फर्श की प्रदक्षिणा है। उसके चारों ओर भी वेदिका में खड़े स्तम्भों में कसी हुई पट्टियाँ हैं, जिन्हें सूचियाँ कहते हैं और उनके ऊपर गोल किए हुए उष्णीश के पत्थर हैं।

नीचे के घेरे की वेदिका की चारों दिशाओं में खुले हुये तोरण द्वार हैं। ये कला की दृष्टि से बड़े ही महत्व के हैं। ये द्वार चौतीस फुट ऊंचे हैं। इनमें दो चौकोर स्तम्भों के ऊपर तीन पड़ी हुई बड़ेरियाँ हैं। इनमें स्तम्भों और बड़ेरियों के दोनों और बड़े सूक्ष्म एवं कलामय अंकन हैं। उत्तरी द्वार की बड़ेरियों में ऊपर की ओर त्रिरत्नों का अंकन है। इन द्वारों की बनावट प्रायः एक सी है किंतु इन पर के अंकन पृथक्-पृथक् हैं। यद्यपि सांची के तोरणों पर अंकित अर्द्ध-चित्रों में बौद्ध धर्म से संबंधित दृश्यों तथा प्रतीकों (जैसे बोधि वृक्ष , भगवान बुद्ध के चरण, कमल, हाथी आदि) की प्रधानता है, तथापि उनमें लोक जीवन की बड़ी सुन्दर और भव्य झाँकियाँ हैं। उनमें कलगीदार घोड़ों पर सवार राजपुरुष, अंकुश धारण करिये महावतों द्वारा नियंत्रित हाथियों अभियानों, शोभायात्राओं से लगा कर कुत्ते को साथ ले जाते हुए बैल गाड़ियों में सवार ग्रामीण परिवारों तक के अनेक अंकन हैं। लोक जीवन संबंधी और झाँकियाँ, जो संग्रहालय में संग्रहीत हैं। भग्न प्रस्तर-खण्डों और मूर्तियों में दिखाई देती हैं, जैसे नाना प्रकार के गले और बाहुओं के आभूषण, केश विन्यास के विभिन्न ढंग जिनमें आजकल के फैशन में प्रतिष्ठा प्राप्त दो चोटियों का श्रृंगार भी है। इन चित्रों में गवाक्षदार दुमंजिले तिमंजिले भवनों का भी अंकन है। बौद्ध धर्म के दृश्यो के साथ हिंदु देवी-देवताओं को भी यथोचित स्थान मिला है। गर्जों द्वारा अभिषेक की जाती हुई राजलक्ष्मी (कुछ लोग इसे माता मायादेवी का चित्रण बतलाते हैं)। इन्द्र, कुबेर, ब्रह्मा तथा गन्धर्व एवं किन्नरों के भी अंकन हैं। मोटे तौर से तोरणों और उनके स्तंभों एवं बड़ेरियों के दोनों पार्श्वों के अंकन में चार प्रकार के चित्रण हैं-

(क) जातक कथाएं - से कथाएं भगवान बुद्ध के पूर्व-जन्म की घटनाओं से, जब तक कि वह बोधिसत्व थे और दश पारिमिताओ या पूर्णताओं (जैसे दान, शील, शान्ति, वीर्य, ज्ञान, प्रज्ञा , आदि) का अनुशीलन कर रहे थे, संबंधित है। जातकों के चित्रण की संख्या अधिक तो नहीं है, किंतु जो है स्पष्ट है। उनमें से नीचे दी हुई जातकों की कथाएं मुख्य हैं-

१ छद्म जातक- इसमें भगवान बुद्ध के छः दाँत वाले हाथी के रूप में अवतरित होने की कथा है। उनके दो पत्नियाँ थीं। एक पत्नी की सपत्नीभाव से प्रेरित

ईर्ष्या के कारण उन्हें अपने सुन्दर दाँत कटवाने पड़े। फिर रानी का हृदय परिवर्तन हुआ और उसने पश्चाताप में प्राण त्याग दिए। इस जातक का चित्रण तीन जगह है— दक्षिणी द्वार बीच की बड़ेरी का भीतरी पार्श्व, पश्चिमी द्वार बिचली बड़ेरी का बाहरी पार्श्व और उत्तरी द्वार की ऊपरी बड़ेरी का भीतरी पार्श्व।

२ महाकपि जातक— इसमें बोधिसत्व के अस्सी हजार वानरों के अध्यक्ष के रूप में अवतरित होने की कथा है। ये सब वाराणसी के अधिपति महाराज ब्रह्मदत्त के राज्य में गंगा किनारे एक पेड़ के नीचे रहते थे। महाराज ने जब उस पेड़ के आमों की प्रशंसा सुनी तब उस पेड़ को अपने सिपाहियों से घेर लिया। बोधिसत्व ने अपने साथियों के भागकर जान से बचाने के लिए अपने शरीर का पुल बना दिया। बोधिसत्व के प्रतिद्वन्दी देवदत्त भी बंदर के रूप में थे। वह बोधिसत्व के ऊपर इतनी जोर से कूदे कि उनके घातक चोट लग गई। बोधिसत्व ने प्राण त्यागते समय महाराज ब्रह्मदत्त को धर्मोपदेश दिया।

३ वैसन्तर जातक— इसमें बोधिसत्व के वैसन्तर नाम के राजकुमार के रूप में अवतार लेने की कथा है। राजकुमार को अपनी दानशीलता के कारण बहुत से कष्ट उठाने पड़े। उन्होंने ब्रह्मणो को अपना एक हाथी, जिस में वर्षा लाने की शक्ति थी, दान दे दिया। उनके पिता ने क्रुद्ध होकर उनका राज्य से निष्कासन कर दिया। वन में भी उनकी दानशीलता कम नहीं हुई। उन्होंने अपनी स्त्री और बच्चों को भी ब्राह्मण वेशधारी शक्र को दान में दे दिया। इसका अंकन उत्तरी द्वार की नीचे की बड़ेरी में हुआ है।

४ सामजातक— इसकी कथा श्रमण कुमार की कथा से मिलती—जुलती है, अंतर इतना ही है कि देवी के वरदान से बालक साम को पुनर्जीवन मिल जाता है। इसका अंकन पश्चिमी द्वार के बाएँ स्तंभ के भीतरी पार्श्व के ऊपरी खांचे में हुआ है।

(ख) भगवान बुद्ध के जीवन से संबन्धित दृश्य— इन दृश्यों में चार मुख्य हैं, वे हैं—जन्म, (जाति,) संबोधि, धर्मचक्र प्रवर्तन और परिनिर्वाण। जन्म का दृश्य कमल पर विराजमान एक नारी आकृति से दिखाया गया है। उसका अभिषेक दो हाथियों द्वारा हो रहा है। 'इसको लोग राजलक्ष्मी का भी अंकन कहते हैं'। सम्बोधि के दृश्य में भागवान अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष के नीचे वज्र आसन पर विराजमान दिखाये जाते हैं। धर्म—चक्र प्रवर्तन का अंकन एक आसन पर स्थापित चक्र से किया गया है। परिनिर्वाण की घटना कुशीनगर में हुई थी। दो साल वृक्षों के बीच में लेटे हुए भगवान दिखाये गये हैं। इस घटना को एक स्तूप के अंकन से प्रदर्शित किया जाता है।

अन्य दृश्यों में प्रमुख है— माता मायादेवी का स्वप्न और गर्भ, चार उदोघक

दृश्य **बुद्ध, रोगी, सन्यासी, और शव**, महानिष्कमण यह दृश्य दक्षिणी द्वार के सबसे ऊपर की बड़ेरी के पिछले पार्श्व तथा पूर्वी द्वार की बीच की बड़ेरी के सामने के पार्श्व में अंकित है। इन दृश्यों में भगवान बुद्ध का चित्रण कम आता है। प्रायः प्रतीकों द्वारा ये दृश्य अंकित किए जाते हैं।

परिनिष्कमणा के दृश्य में घोड़ा और छन्दक, जो भगवान के साथ आया था, चित्रित किये गये हैं। छन्दक भगवान बुद्ध के चरण-चिन्हों को प्रमाण करता हुआ दिखाया गया है।

सुजाता की खीर (**उत्तरी द्वार की बीच की बड़ेरी के पीछे का भाग**)- सुजाता उरूवेला के एक सामन्त की लड़की थी। इस दृश्य में भगवान बुद्ध के बुद्धत्व प्राप्त करने के पूर्व उनकी खीर अर्पण करते हुए दिखाया गया है।

मार विजय (**उत्तरी द्वार पिछले पार्श्व में बीच की बड़ेरी**) - मार कामदेव का ही रूप है। यह भगवान क बुद्धत्व प्राप्त करने से पूर्व ध्यान भ्रष्ट करने आया था।

कपिलवस्तु गमन (**उत्तरी द्वार, दाहिना, स्तम्भ, भीतरी पार्श्व, तीसरा खांचा: यह दृश्य पूर्वी द्वार के दाहिने स्तम्भ पर भी अंकित है**)- यह घटना महानिष्कमण के सात वर्ष बाद की है। वैशाली में एक द्वारा भगवान को मधु अर्पण- यह पूर्वी द्वार के बाएं खम्भे के पिछले पार्श्व में अंकित है। जेतवन दान (**उत्तरी द्वार, बायां खम्भा, सामने का पार्श्व दूसरा खांचा**)- इसमें अनाथपिण्डक नाम के एक धनी सौदागर द्वारा राजकुमार जैत का वन खरीद कर भगवान को अर्पण किये जाने की कथा है। इसका मूल्य जमीन पर सोने की मुहरें बिछाकर चुकाया गया था।

(ग) भगवान बुद्ध के परिनिर्वाणोत्तर दृश्य- इनमें मुख्य हैं- १ भगवान के अस्थ्यवेषों के लिए कुशीनगर पर आक्रमण का चित्रण (**दक्षिण द्वार, निम्नतय बड़ेरी, पिछला पार्श्व तथा पश्चिमी द्वार की ऊपरी और बीच की बड़ेरियों के पिछले भाग,**) २ एक ग्राम के स्तूप पर भगवान के अस्थ्यवशेषों के लिए सम्राट अशोक द्वारा आक्रमण (**दक्षिणी द्वार बीच की बड़ेरी सामने का पार्श्व**); (३) सम्राट अशोक द्वारा बोधि वृक्ष की यात्रा (**पूर्वी द्वार, निम्नतम बड़ेरी, आगे का पार्श्व**)।

(घ) स्फुट दृश्य और अलंकरण- इनमें प्रमुख हैं:- जीवन संबंधी दृश्य जैसे घोड़े, घोड़े जुते हुए रथ (**इसमें गवाक्षदार दुमजिला मकान भी देखे जा सकते हैं**)। हाथी, बड़ेरियाँ साधे हुए बौने, चौरी डुलाती हुई यक्षिणियाँ, कल्पलताएँ, मोर, कमल, धर्मचक्र तथा त्रिरत्न (**बुद्ध, धर्म और संघ**) ये अलंकरण यत्र तत्र सर्वत्र दिखाई देते हैं। (**इसमें मोर, हाथी, घोड़े आदि के अंकन देखे जा सकते हैं**)।

अन्य स्तूप- इनमें मुख्य संख्या दो और तीन हैं। संख्या तीन के स्तूप का विशेष महत्व है। इसमें भगवान दो प्रमुख शिष्यों (**सारिपुत्र और महा मौगलायन**)

के अस्थ्यवशेष हैं। इस स्तूप में एक ही द्वार है और इस के गुम्बज आकार में छोटे हैं। (व्यास ४६ फुट ७ इंच और ऊंचाई २४ फुट है) इसके ऊपर छतरी भी एक ही है।

दूसरा स्तूप पहले स्तूप से कुछ हटकर निचाई की ओर है। इसमें कोई तोरण द्वार नहीं है, छत्र और हर्मिका भी नहीं दिखाई देते। इसमें दस सन्तों और धर्मोपदेशकों के अस्थ्यवशेष पाये गये थे। इसके खम्बो आदि पर सुन्दर अलंकरण और दृश्य अंकित हैं। इनके अतिरिक्त और भी बहुत से मंदिरो और मठों के भग्नावशेष हैं। ये भग्नावशेष साँची के प्राचीन वैभव के घोटक हैं। यहां पर कलकत्ते की महाबोधि सुसाइटी के तत्वावधान मे बना हुआ एक नवीन बोद्ध मंदिर भी है। इसमें चीनी चित्रकला के पर्दे देखे जा सकते हैं। इसका फर्श संगमरमर का है। यह स्थान भी बड़ा रमणीय है और आधुनिक युग की गौर वृद्धि करता है।

छत्तरपुर और खजुराहो के पुनर्दर्शन

मेरे सक्रिय जीवन के प्रायः सत्रह वर्ष भूतपूर्व छतरपुर राज्य की सेवा में बीते थे। वहां के मनोरम प्राकृतिक दृश्य, साहित्य संगीत-कला -प्रधान वातावरण और सफलता-विफलता एवं अधिकार और सेवा मिश्रित राजनीतिक जीवन मेरे स्मृतिपटल पर आज भी मधुरिमा -मंडित लिपि में अंकित है। संयोगवश मेरे कनिष्ठ पुत्र विनोदशंकर का पुरातत्व विभाग के अधीन खजुराहों (छतरपुर)को स्थानांतर हो गया और मैं इन दिनों भोपाल में अपने द्वितीय पुत्र डा. शिवशंकर गुप्त के पास ठहरा हुआ था। अपनी कर्तव्य भूमि छतरपुर के २६ वर्ष बाद पुनर्दर्शन की बलवती इच्छा उत्पन्न हुई, किंतु, क्षणों रूष्टः क्षणों तुष्टः -प्रकृति वाला मेरा स्वास्थ्य मुझे संकल्प विकल्प में डाले रहा। शरीर और मन का सामंजस्य कठिन हो गया था, किंतु, दशहरे की छुट्टियां आते ही संकल्प विकल्प समाप्त होकर दृढ़ निश्चय में परिणत हो गया। घर के लोगों को छुट्टी मनाने की मनोदशा में देखकर मुझ में सहसा ढाई सौ मील की मोटर यात्रा करने का साहस आ गया। मध्यप्रदेश की वन-श्रीसंपन्नता देखते हुए और 'शनैः कथाः शनैः पंथाः' के न्याय की बीच-बीच में विश्राम लेते हुए और नदी-नालों और घाटियों के उतार चढ़ाव को पार करते हुए २८ सितम्बर १९६० को चलकर २८ को मध्याह्न से पूर्व हम छतरपुर पहुंचे।

थोड़ा विश्राम लेने और नई व्यवस्था का परिचय प्राप्त करने, पुराने समय में जिसे कोठी पहाड़ कहते थे और आजकल जिसे सर्किट हाऊस या विश्राम -गृह कहते हैं, उसमें पहुंचे। पुराने जमाने में, आधुनिक सभ्यता से अप्रभावित छतरपुर में कोठी पहाड़ अंग्रेजी सभ्यता की सुख सुविधाओं और वैभव का केंद्र था, वहां अब नई सृष्टि पाई। पुराने आदमी या तो पैंशन पा चुके थे या परलोकगत हो चुके थे। अपना परिचय देने की आवश्यकता पड़ गई। सज्जोपकरण सब नए थे। दो एक पुरानी मेजे और काठ के पर्दे विगत समय की याद दिला रहे थे। राष्ट्रपिता महात्मा

गांधी का विशाल तैल-चित्र इस भवन के भारतीयकरण का परिचायक था। पहले जमाने में वहां महात्मा गांधी के चित्र की गुंजाइश न थी। और भी कई बातों में भारतीय करण दिखाई देते थे। यद्यपि वहां पहले जमाने का आतंकमय वैभव तो नहीं था, तथापि, सादगी के साथ स्वच्छता थी। छतरपुर के आसपास नए अफसरों के नए ढंग के भवन प्रचुर मात्रा में अस्तित्व में आ गए हैं, मानों किसी ने भवनों के बीच बो दिए हों और वे एक रात में उग आए हों। मैं अंग्रेजी साहित्य में प्रसिद्ध रिपवेन विन्किल की भांति, जो बीस वर्ष की गाढ़ निद्रा के पश्चात् अपने नगर पहुंचा था, भौचक्का सा रह गया था।

छतरपुर का जिला भूतपूर्व छतरपुर-राज्य से भी बड़ा है। वह यातायात का पहले से भी अधिक आकर्षण केंद्र बना हुआ है। दो-दो स्थानों पर पेट्रोल पंप हैं, जिन पर कई स्थानों को आने जाने वाली मोटर बसें अपना शक्ति पाथेय खरीदती हैं। मोटर के अड्डे पर तांगों और रिशों की भरमार थी। किराये के तांगो पिछले जमाने में कुछ दुर्लभ ही थे। जो सुख सुवधाएं पहले सरकारी अफसरों के विशेषाधिकार की वस्तुएं थीं, वे आज, पैसा खर्च करने पर, जन-जन के लिए सुलभ हैं। बाजार में विशेष उन्नति तो नहीं हुई, फिर भी, चहल-पहल पहले से अधिक है। यातायात नियंत्रण के लिए दो-एक स्थानों पर चुस्त वर्दी में पुलिस के सिपाही भी दृष्टिगोचर होते हैं। भूतपूर्व छतरपुर नरेश महाराजा भवानीसिंहजूदेव का बनवाया हुआ सिनेमा हॉल जनता के लिए मनोरंजन के साधन उपस्थित करता है। छतरपुर पहले से विद्याकेंद्र रहा है। देश-विदेश के उच्चकोटी के विद्वान वहां आते रहे हैं। वह तो व्यय-साध्य बात थी और उससे कुछ चुने हुए लोगो ही को लाभ पहुंचता था। अब महाराज कॉलेज उच्चतम शिक्षा का केंद्र बना हुआ है और उससे छतरपुर जिले के विद्यार्थी ही नहीं, वरन् दूर-दूर के विद्यार्थी लाभान्वित हो रहे हैं।

महाराज साहब ने अपना अंग्रेजी का अमूल्य एवं महत्वपूर्ण पुस्तकों का भांडार सार्वजनिक उपयोग के लिए खोलकर अपनी उदारता का परिचय दिया है। पुस्तकों के साथ श्री महाराज विश्व-नाथसिंह क्लब के सदस्यों के उठने-बैठने और आमोद प्रमोद के लिए नए महाराज ने अपने भव्य दरबार हॉल का उपयोग सुलभ कर रखा है। इसके लिए महाराज साहब धन्यवाद और बधाई के पात्र हैं। उसने लोगों का बैठना उठना और चहल-पहल रहे, इससे बढ़कर क्या संतोष की बात हो सकती है, किंतु, वहां अपेक्षित चहल-पहल कम दिखाई दी। कॉलेज के अध्यापकों को चाहिए कि विद्यार्थियों को पुस्तकालय के अधिक से अधिक उपयोग के लिए प्रोत्साहन दें। इसी के साथ सदस्यों का यह कर्तव्य है कि वे हॉल और पुस्तकालय

की साज सम्भाल ठीक रखकर उसका गौरव और उसकी प्रतिष्ठा बनाये रहें। ताश, शतरंज, लूडो, टेबल टेनिस तक कोई आपत्ति की बात नहीं, लेकिन, हॉल में हर समय बेडमिंटन का जाल लगा रहना उसकी प्रतिष्ठा के अनुकूल नहीं है। उसकी साज सम्भाल और गौरव प्रतिष्ठा कायम रखने में महाराज साहब, नगर अधिकारियों और कॉलेज के अध्यापकों को अधिक रूची लेना चाहिए, जिससे स्वर्गीय महाराजा विश्वनाथ सिंह जी के अपूर्व विद्याप्रेम तथा पुस्तक संग्रह की कीर्ति कायम रहे। हिंदी और संस्कृत ग्रंथों का अमूल्य भण्डार भी यदि कम से कम हिंदी अनुसंधान के विद्यार्थियों के उपयोग के लिए खोल दिया जाये, तो साहित्य का बड़ा उपकार होगा। वहां की पुस्तकों की सूचि विधिवत किसी जानकार व्यक्ति द्वारा तैयार करा कर विश्वविद्यालय के हिंदी विभागो को भेज दी जाये, जिससे उनको इस पुस्तक भंडारण का पता चल जाये।

छतरपुर से हम लोग खजुराहों गये। खजुराहों के कलापूर्ण मंदिर चंदेल राजाओं के धर्म और कला प्रेम के परिचायक हैं। उनमें से अधिकांश का निर्माण काल दसवीं ग्याहरवी शताब्दी का है। कुछ का जैसे चौंसठ योगिनी का, कुछ काल पहले का भी है। इनमें अधिकांश मंदिर शैव और वैष्णव सम्प्रदायों के हैं। एक क्षेत्र जैन मंदिरों का भी है। ये मंदिर भिन्न-भिन्न संप्रदायों में पारस्परिक सोहार्द पूर्ण प्रतिस्पर्द्धा के परिचायक हैं। कमल के आसन पर विराजमान बुद्ध भगवान की एक विशाल मूर्ति भी उस क्षेत्र में पायी गयी, है, जिससे ज्ञान होता है कि वहां बौद्ध मंदिर भी रहें होंगे। इस मूर्ति पर उत्कीर्ण लेख, कि दुख के शमन के लिए भगवान का अवतार हुआ, उसको निश्चित रूप से बुद्ध प्रतिमा प्रमाणित करता है। खजुराहों के प्रधान देवता मैतंगेश्वर महादेव ही हैं। उस मंदिर का विशाल शिवलिंग, मंदिर के द्वार से भी ऊँचा है। वह भव्य और दर्शनीय है। यह मंदिर महाराजा धंग का बनवाया हुआ है। कहा जाता है कि इस मंदिर के विशाल शिवलिंग के भीतर मरकत मणिनिर्मित लिंग है। इस प्रस्तर लिंग के ऊपर कुछ अरबी के अक्षर भी अंकित हैं। ये अक्षर जल डालने से स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं।

इन मंदिरों की मरम्मत का बहुत कुछ कार्य बहुत पहले ही, महाराज प्रताप सिंह के समय ही में ही हो गया था और उस मरम्मत ही का फल है कि मंदिर आज तक वर्तमान हैं। फिर स्वर्गीय महाराजा विश्वनाथ सिंह जी के शासनकाल में भारत की अंग्रेजी सरकार की मदद से दो बार मरम्मत हुई। आधा खर्च भारत सरकार ने दिया तथा आधा तत्कालीन छतरपुर राज्य ने दिया। वहां इधर-उधर बिखरी हुई मूर्तियों, टूटे शिखर खंडों, चौखटों और सरदलों का एक संग्रहालय भी बनाया गया

था।

सबसे पहले हम लोगों ने उसे संग्रहालय को देखा, यह खुली छत का संग्रहालय है। उसका कुछ भाग तो पत्थर की चौकियों से पक्का बना हुआ है, बाकी गिट्टी से कुटा हुआ है। प्रायः २०-२५ वर्ष हो गए और वह फर्श पूरा नहीं हुआ। आजकल पुरत्त्व विभाग के अधिकारियों की सतत देखभाल के कारण वहां वहां घांस नहीं उग पाती। मूर्तियां पहले ही की भांति सुव्यवस्थित रूप में अपने-अपने आधारों पर रखी हुई हैं। पुरानी चीजों में दो एक सर्दल दर्शनीय हैं। एक सर्दल पर कृष्ण भगवान की लीलाओं का अंकन है। दूसरे सर्दल पर दशावतार अंकित हैं। उसमें समुंद्र-मंथन का भी चित्र दिखाई देता है। भगवान बुद्ध की मूर्ति का हम पहले भी उल्लेख कर चुके हैं। हरिहर की टूटी मूर्ति भी दार्शनीय है। स्त्रियों के केश-विन्यास की भिन्न-भिन्न शैलियों के तथा गले, कमर और हाथों के विविध प्रकार के अलंकरणों के अनेक चित्र दृष्टिगोचर होते हैं। इन मूर्तियों के परिचय पटल की आवश्यकता है। कुछ नई मूर्तियां भी संग्रहीत की गई हैं। उनके अभी यथास्थान रखे जाने की व्यवस्था नहीं हुई है। नई मूर्तियों में गणेशजी की मूर्तियां उल्लेखनीय हैं। सरकार की ओर से एक विशाल संग्रहालय तैयार हो रहा है। वर्तमान संग्रहालय की न्यूनताओं की पूर्ति तथा इधर-उधर से प्राप्त नई मूर्तियों की व्यवस्थापूर्ण स्थापना नए संग्रहलय की प्रतीक्षा में हैं।

नई व्यवस्था में तीन बाते उल्लेखनीय हैं। पहले जहां ये विशाल मंदिर अनाकर्षक बंजर भूमि में स्थित थे, वहां उनके हरे-भरे शादल और कटे छटे मागों में विभक्त उद्यानों की पृष्ठभूमि मिल रही है। इनसे उनका सौंदर्य निखर आया है। यात्रियों के बैठने के लिए दो एक स्थानों में बेंचों की भी व्यवस्था है। इन बेंचों और वृक्षों के चारों ओर पक्के चबूतरों की व्यवस्था बढ़ाई जाने की आवश्यकता है। पश्चिमी वर्ग के प्रमुख मंदिर पीछे से करोड़ों की बाढ़ या हैज से और आगे से तारों के घेरे में आबद्ध हैं। आजकल प्रवेश टिकटों से होता है। टिकट के २० नए पैसे लगते हैं।

कंधारिया मंदिर का, जो वहां का प्रमुख मंदिर है, जिसमें गर्भगृह, अंतराल, महामंडप, मंडप, अर्धमंडप, प्रदक्षणा आदि सभी भाग वर्तमान हैं और जो अपने पार्श्वों पर उत्कीर्ण प्रतिमाओं के सौंदर्य के लिए प्रसिद्ध है, रासायनिक प्रक्रियाओं से परिमार्जन हो गया है। जो पहले काई और जलवायु के प्रकोप से प्रायः काला हो गया था, वह अब अपना नैसर्गिक रूप रंग प्राप्त कर चुका है। इस मंदिर की पार्श्व मूर्तियों

में जीवन के अनेक चित्रण, जैसे सूअर का शिकार, हाथी-घोड़ों के अभियान, मृदंग, बांसुरी आदि वाद्ययंत्रों के बजाने नर्तकों और गायकों की मंडलियां आदि दिखाई देती हैं। भीतर से भी अब सफाई हो गई है और चिमगादड़ों द्वारा खराब किये जाने की संभावना मिट गई है। कंधरिया महादेव के मंदिर के द्वार और खिड़कियों ही पर जालीदार किवाड़ नहीं लगे हैं, शेष प्रायः सभी मंदिर की उस प्रकार की रक्षा व्यवस्था कर दी गई है। इससे कुछ नवीनता का वातावरण तो उपस्थित हो गया है, किंतु, चिमगादड़ों का आंतक जाता रहा है, कंधरिया मंदिर में भगवान प्रमथेश्वर (शिव) की प्रतिष्ठा है। इसको भी महाराजा धंग ने बनवाया था।

लक्ष्मणजी का मंदिर, जिसमें भगवान विष्णु की मूर्ति विराजमान है, महाराजा यशोवर्मन का बनवाया हुआ है। उसमें शिलालेख भी है, जो संवत् १०११ में खोदा गया था। महाराजा यशोवर्मन का दूसरा नाम लक्षवर्मन भी था। सम्भवतः लक्षवर्मन के आधार ही पर इस मंदिर का नाम लक्ष्मणजी का मंदिर पड़ा। इस वर्ग से थोड़ी दूरी पर जैन मंदिरों का समूह है। यह गांव के दक्षिण पूर्व में स्थित है। इसमें भगवान आदिनाथ, शांतिनाथ और पार्श्वनाथ के मंदिर वर्तमान हैं। इनका शिल्प साधारणतः हिंदु मंदिर जैसा लगता है। इनके बाहरी भाग में हिंदु देवी देवताओं की कुछ मूर्तियां हैं। इनकी देख-रेख में अधिकांश हाथ जैन ही का है।

एक मंदिर से दूसरे मंदिर तक जाने के मार्ग प्रशस्त हो गए हैं और उन पर सकेत पट भी लगे हुए हैं। स्थान-स्थान पर लगे हुए परिचायक पटल उस स्थान की मानवी देखरेख के परिचायक हैं। मंदिरों में जूता उतारने के सकेत पट यात्रियों को मंदिर की पवित्रता और मर्यादा बनाये रखने में सहायक होते हैं।

उच्च स्तर के यात्रियों की सुविधा के लिए मंदिर से थोड़ी दूर राजनगर की सड़क पर एक सर्किट हाउस भी बन गया है। वह छतरपुर के सर्किट हाउस की भांति उतना विशाल तो नहीं है किंतु आधुनिकता और साज-सज्जा में उससे कहीं बढ़ा-चढ़ा है। उसके बैरे रज्जव ने मुझ से कहा कि साहब लोगों की, मुलक -मुलक से आए हुए साहब लोगों की, इतनी आवाजाई रहती है कि कभी-कभी तो खाने की भी फुर्लत नहीं मिलती। इतनी आमदरपूत अंग्रेजों जमाने में भी नहीं थी।

यह बात अपनी सरकार के विदेशों से संपर्क, देखभाल की सुव्यवस्था और विज्ञापन कौशल की परिचायक हैं। देशी और विदेशी यात्रियों की संख्या में वृद्धि होने का प्रभाव वहां आस पास के बसने वालों पर भी पड़ा। नौकर -चाकरों को रोजगार मिला है। दूकानदारों का व्यापार बढ़ा है। रेस्ट्रॉ और होटल भी आस्तित्व में आ गए हैं। पहले शिवरात्रि के अवसर पर केवल एक महीने ही मेला रहता था, अब

वहां रोज छोटा पूरा मेला लगा रहता है। रात को बारह बजे तक बिजली की भी व्यवस्था है, जिससे जंगल में मंगल का दृश्य उपस्थित हो जाता है। सरकार खजुराहों की देखभाल में और साज-सज्जा पर पर्याप्त मात्रा में अर्थ व्यय कर रही है। बगीचे की सिंचाई और काट-छांट में भी काफी रूपया खर्च होता है। फिर पुरातत्व विभाग के अंतर्गत कई उप-विभागों के अधिकारी, जैसे क्यूरेटर, ओवरसियर, उद्यान- प्रधिकारी, सर्वेयर, केमिस्ट आदि रहते हैं। पहले एक राज्य ही पर इसकी देखभाल का भार था और उसने अपने उत्तरदायित्व को अच्छी तरह निभाया, अब उस भार को सारे प्रदेश और सारे भारत ने अपनाया है। खजुराहों की रक्षा और शोभाप्रतिष्ठा में सारे देश की शोभा प्रतिष्ठा है।

[मध्यप्रदेश सन्देश ५ जनवरी १५६९]

सुरम्य झीलों का नगर भोपाल

यद्यपि मैं 'सिया राम मय सब जग जानी' और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के उदार सिद्धांतों को कम से कम मनसावाचा अनुयायी हूँ और व्यवहार में भी बहुत अनुदार नहीं हूँ। फिर भी 'आयं निजः परोवेति' की लघुचेता लोगों की गणना से परे नहीं हूँ। मुझे पारिवारिकता में आस्था है और आगरा से विशेष प्रेम होते हुए भी कभी-कभी पारिवारिक एकता और सहवास सुख प्रत्यक्ष अनुभव करने के लिए मैं जहां मेरे पुत्र-पोत्र होते हैं। उनके महोवश उसी स्थान को घर मान कर वहां कुछ काल के लिए रहना पसंद करता हूँ: 'जहां अवध जहं राम निवासू'।

भोपाल में, जो कि कवियों और पंडितों के आश्रयदाता राजाभोज के इतिहास और लोकवार्ता प्रसिद्ध नाम से संबन्धित है, मेरा द्वितीय पुत्र डा. शिवशंकर गुप्त मैडीकल कॉलेज में प्रोफेसर हैं। मेरा कनिष्ठ पुत्र विनोद शंकर भी कुछ काल के लिए वहीं आ गया था। क्योंकि उसका भी स्थानान्तरण खजुराहों मध्यप्रदेश हो गया था। ज्येष्ठ पुत्र रामशंकर गुप्त स्वयं तो नहीं उसके बाल बच्चे ग्रीष्मा अवकाश मनाने भोपाल ही आ गये थे। इस पारिवारिक त्रिवेणी संगम की चहल-पहल में मेरे जीवनचर्या, आमोद प्रमोद मेरे पोत्रों के नाम भी यही हैं के साथ सुखपूर्वक चलती रहती है। आगरे के भीषण आतप और लू प्रधान 'दीरघ-दाघ-निदाघ' के प्रकोप से बचने के लिए अतिरिक्त स्वयंजनों की प्रेममय चिंता द्वारा आयोजित खानपान और औषधौपचार की व्यवस्था भी अपेक्षाकृत सुख कर रहती है। प्रातः और सायं ब्रह्म, सांध्योपासना भी धार्मिक नियमितता के साथ आगरे की अपेक्षा कुछ अधिक हो जाते हैं- दूरी में तो नहीं व्ययाम की मात्रा में ही यह अधिक रहता है क्योंकि मानव जीवन के उतार-चढ़ाव की भांति यहां की सड़के भी उतार-चढ़ाव दार हैं। 'मूक होई वाचाल पंगु चढ़े गिरिवर गहन' का नित्य पाठ करते -करते कलि-मल-दहन दयालु भगवान की कृपा से मैं पंगुवत आशक्त शतसन्धि जर्जर शरीर रखता हुआ और नौ दिन अढ़ाई कोस की चाल से चलता हुआ भी गिरिवर गहन तो नहीं गिरिसम

मुझ जैसे लोगो के लिए दुरूह चढ़ाईयों को पार कर जाता हूँ। यही भोपाल वास प्रत्यक्षफल है। भोपाल में दर्शनीय स्थान अधिक तो नहीं हैं किंतु कुछ है अवश्य। अपने जल की अनिन्द्य निर्मलता और उसके अगाध गाम्भीर्य एवं नगरव्यापी विस्तार के कारण अन्य तालाबों को तलैया की संज्ञा दिलाने वाला भोपाल का विशाल ताल यहां का विशेष आकर्षण केंद्र है। यहां दो तलाब या झीले हैं- एक छोटी, एक बड़ी। छोटी का उल्लेख पहले इस लिए करता हूँ कि उसका एक भाग मेरे घर से दिखाई देता है। अरूणोदय की पुन्य वेला में मैं उसे माता भागिरथी का प्रतिनिधि मान 'गंगवारी मनोहारी मुरारिचरणच्युतम' का मन ही मन पाठ कर निष्काम भाव से प्रणाम कर लेता हूँ। इस झील में उगे हुए प्रफुल्ल कमलदल-वासिनी भारत माता का सुरम्य चित्र सामने ले आते हैं।

बड़ी झील के उर्मिल जल में स्नान करने वाले भक्त लोगो के तो कम किंतु तेराकी शौकिन लोगों को कुछ दर्शन होते हैं। बड़ी झील के किनारे दो एक स्थलो पर सीढ़ीदार घाट से उसे तीर्थ स्थान की आभा प्रधान करते हैं। इन झीलों में नोका विहार की भी सुविधा है। यहां एक याटकल्ब भी है। यह किनारे से थोड़ी दूरी हटकर जल के भीतर लौह स्तम्भों पर आधारित तख्तो पर लकड़ी का बना हुआ है। उसके बाहर जल की शोभा और विस्तार कर आनन्द लेने के लिए कठसोयी (रेंलिंग) से घेरा हुआ एक चबूतरा है।

भोपाल में कई शिक्षा-संस्थाएं भी हैं, उन में प्रमुख हैं: हमीदिया कॉलेज, मेडीकल कॉलेज और पोलीटेकनीक जिसमें अब मौलाना आजाद कॉलेज ऑफ टेकनीकोलोजी स्थापित हो रहा है। उद्योगो की दृष्टि से तो यह स्थान विशेष महत्व का नहीं है थोड़े बहुत कुटीर उद्योग आवश्यक हैं, यहां मलमल के बटुए अच्छे बनते हैं। किंतु यहां पर 'हैवी इलैक्ट्रीक' के नाम से एक वृद्ध उद्योग केंद्र आस्तित्व में आ रहा है। यह शहर से पांच-छह मील की दूरी पर है। यहां पर बिजली की भारी मशीनें और उनके उपकरणों का निर्माण होगा।

पुराने भोपाल की विगत वैभव के चिन्ह तो दिखाई देते हैं। किंतु नगर संकीर्ण और मलिन प्रायः दिखाई देता है। यहां की शाही इमारतें अवश्य दर्शनीय हैं, उनमें प्रमुख हैं- सदर मंजिल और नवाब साहब की प्रसिद्ध मस्जिद। सदर मंजिल में आजकल कुछ सरकारी दफतर हैं। यहां की नई सरकारी इमारतें अपेक्षाकृत भव्य और दर्शनीय हैं। उनमें मुख्य हैं- एम०एल०ए रेस्ट हाउस, नया रेडियो स्टेशन, सचिवालय और नैशनल आरकाइव्ज जिसमें पुराने कागजों और अभिलेखों की रक्षा अच्छी व्यवस्था है। नये भोपाल के आवास गृह सुंदर, स्वस्थ हवादार और सुविधाजनक

हैं।

तांत्याटोपे नगर , जिसको अंग्रेजी प्रभाव और संक्षिप्तता प्रेम से टी०टी० नगर भी कहते हैं, यहां का नया नगर है। इस का निर्माण बड़ी द्रुतगति से हुआ है। नौ महीने में प्रायः दो हजार मकान तैयार हो गये थे। एक मकान का निर्माण काल साधारणतया तीन घंटे से अधिक नहीं पड़ता। यह गति देवी या जादु के चमत्कार की स्पष्टीकरण करती है। यहां के बौद्धिक जीवन से मेरा विशेष संपर्क तो नहीं हुआ उसके लिए मेरा शारीरिक स्वास्थ्य तो निश्चय ही और किसी अंश मानसिक स्वास्थ्य भी अनुकूल नहीं हैं किंतु शक्ति और साधनों के अनुकूल काव्य-शस्त्र विनोद चलता ही रहता है। भूले- भटके एक आधे लेख भी लिख लेता हूँ या लिखा देता हूँ और संपादकों के लिए स्वीकृति अस्वीकृति का धर्मसंकट और अक्षर भगवान को अंगुल्याग्र पर नाच नचाने वाले कंपोजिटर्स के लिए सिर दर्द पैदा कर देता हूँ। दृष्टिमान्ध मांग के कारण पठन-पाठन और लेखन में विशेष प्रगति नहीं हो पाती। चश्मा कुछ कठिनाई के साथ शायद इतना ही काम देता है, जितना की भारत की आर्थिक और औद्योगिक गति में विदेशी ऋण। भोपाल में पठन-पाठन के अभाव की पूर्ति प्रकृति के उन्मुक्त ग्रंथागार से हो जाती है। यहां के प्रकृतिक दृश्य बड़े सरम्य हैं। उनमें एक भदभदा प्रपात हैं। वह बड़ी झील का अंतिम छोर है। वर्षा ऋतु में ही इसकी शोभा निखार पर आती है। प्रपात की वेगमयी निर्मल धाराओं की टकराहट से उठे हुये उज्ज्वल झागों के उदय और विलयन तथा मुक्ता फलों को विनिंदित करने वालों जल सिकरों के धुआँ-धार नर्तन और उन सब के मिश्रण से बनी हुई इठला कर चलने वाली उर्मिल जलधारा का आलोड़न-विलोड़न दर्शक के मन को मुग्ध कर देता है।

भोपाल से अटठाइस मील की दूरी पर दिलावाड़ी नाम का सघन वन प्रदेश है। जो वनभोज के लिए विशेष रूप से आकर्षक और उपयुक्त हैं। वर्षा ऋतु में सभी वृक्ष, पौधे, लता, गुल्म आदि नव पल्लवों का परिधान पहन एक नयी और मोहक छटा धारण कर लेते हैं। कहते हैं कि यहां पास के झरने में हिंस्त्र जन्तु भी अपनी प्यास बुझाने आते हैं। वहां का डाक बंगला सुरक्षित और सुविधाजनक है।

भोपाल मध्यप्रदेश की राजधानी होने के कारण चहल-पहल का केंद्र बनता जा रहा है। नये भोपाल में सरकारी नौकरों की बहुतायत के कारण भारत के सारे प्रांतों का प्रतिनिधित्व हो रहा है। शिक्षित जन जीवन का यह वैविध्य बड़ा सुखद प्रतीत होता है। मोटरों का यातायात भी पर्याप्त मात्रा में है। सड़कों के उतार-चढ़ाव के कारण मोटरों में जीपों का प्राधान्य है। बाजार पुराने ढंग के हैं। नये ढंग की दुकान केवल 'रायल मार्किट' में हैं। नाम जितना भव्य है उतना देखने में भव्य नहीं है।

143 / जीवन रश्मियाँ

वैसे यहां किसी वस्तु की कमी नहीं है। जीवन की सबसे प्राथमिक आवश्यकता है रोटी की, वह यहां सहज सुलभ है। डबल रोटी के साईकल आरोही विक्रेता विचित्र-विचित्र स्वरो में विज्ञापन करते हुए, 'हमारी रोज की रोटी दें' वाली इश्वर के ऊपर पूर्ण निर्भरता प्रकट करने वाली ईसाइयों की प्रार्थना को स्वीकृति स्वरूप सवेरे से ही क्वार्टरों का चक्कर लगाते फिरते हैं। किंतु वे अंग्रेजियत छोड़ गये, इसका यह जवलन्त प्रमाण है। वर्तमान मे तो भोपाल में बहुत सी सुख सुविधाओं की न्यूनताएं हैं। किंतु इस विकासशील नगर की संभावने अमित हैं। नित्य नये भवनों का निर्माण हो रहा है, विकास योजनाएं चल रही हैं। मेरे लिए तो वर्तमान ही सब कुछ है। मेरी आवश्यकताएं थोड़ी हैं। मेरे लिए तो भोपाल दिल्ली से भी बड़ा है। 'सो ताको सागर तहां जहां जाकी प्यास बुझाये'।

[सप्ताहिक हिन्दुस्तान, १५ दिसम्बर १९६०]

कवीन्द्र रवीन्द्र शिमला स्मृति

कुछ तो आगरे के भीषण ताप से बचने के लिए और कुछ पारिवारिक मिलन से सुखानुभव के अर्थ में अपने छोटे भाई रामचंद्र गुप्त के पास वुड फील्ड शीमला आया हुआ था। भाई रामचंद्र ने मुझे बतलाया और आपकी पत्रिका के रवीन्द्र विशेषांक से भी ज्ञात हुआ कि 65 वर्ष पूर्व कवीन्द्र रवीन्द्र अपनी चरण धूली से इस भवन को पवित्र कर चुके थे वे 1893-1894 में यहां अपने बड़े भाई के पास जो प्रथम भारतीय आई०सी०एस० अफसर थे, आये हुए थे और यहां के सुरम्य प्रकृतिक दृश्य से प्रभावित हो अचल स्मृति नाम की एक कविता लिखी थी।

मैंने इस पूतपावन एतिहासिक भवन में एक सप्ताह से कुछ अधिक बिता कर अपनी शिमला यात्रा को धन्य माना और तीर्थ यात्रा का आनंदानुभव किया। मेरे भाई ने इस कविता को कवीन्द्र रवीन्द्र की जयशताब्दी के पुन्य अवसर पर पढ़े जाने के अर्थ एक बंगाली सज्जन (श्री०के०पी) हाथी से उपलब्ध कर रखा था। मैंने उसी शैल श्रृंगमाला के सनमुख बैठकर उस कविता का हिंदी में छायानुवाद किया। उसको आपके पाठकों के लाभार्थ आपकी सेवा में भेज रहा हूँ।

कवीन्द्र रवीन्द्र ने इस शैल शीखर को नवम्बर-दिसम्बर के शीतकाल में देखा था। तब वे सामने की पर्वत श्रृङ्गमाला पर स्थित नीहार रेखा (बर्फनीली पंक्ति) का आनंद ले सके थे। मैं उसे ग्रीष्म और वर्षा के संधि काल में देख रहा हूँ। मैं निहार रेखा के दर्शनतो नहीं कर सका किंतु रूई के गालों के सदृश नीहार रोपम धूम धुमारे मेघ खंडों को उठते हुए और उन में शस्य-श्यामल पर्वत श्रृङ्गों को घुलते मिलते देखने का आनंद ले सका हूँ। बादलों को बीच में हो कर छनती हुई धूप का अनुभव देख सका हूँ। बादलों में मिलते हुए पर्वत श्रृङ्गों को कवीन्द्र रवीन्द्र को अम्बर चुम्बित भाल हिमाचल की उक्ति का आनन्दानुभव हुआ होगा। मेरे लिए भी इस अचल पर्वत की स्मृति अचल रहे।

अचल धवल शैल सदृश

एक अचल स्मृति

मेरे हृदय में
नित्य जगती रहती है।
उस नीरव हिम गिरि को घेरे
मेरे दिन और मेरी रातें
फिर-फिर आती और जाती रहती हैं।
जहां उसके चरण हैं
वहां मेरा गंभीरतम मर्म स्थल है
उसका उन्नत शिर
मेरी उच्चतम भावनाओं को प्रेरित करता है।
मेरी शत-शत कल्पनाएं
मेघ के समान उसे घेर कर
हंसती रोती और प्रेमावश में
नतमस्तक होती हैं।
मेरी श्यामल तरू लतिक्राएं
अपने पल्लवपुष्पों का मृदुल भार लिये
उसे अपनी सरल कोमल बहुओं के वेष्टन में
आबद्ध करना चाहती हैं।
वह शिखर गगनलीन, दुर्गम और जन हीन हैं।
मेरी वासनाओं का विहग अकेला ही वहां
दिन रात मंडराता रहता है।
उसके चारों ओर कितनी आशाएं अभिलाषाएं
कितने गीत, कितनी वार्ताएं चलती रहती हैं।
उन सब के बीच शुद्ध ध्यान के समान
उसकी निश्चल नीरवता आकर्षित करती रहती है।
दूर जाने पर भी वह मुझे दिखाई देता है।
मेरे मानस गगन में उसकी नीहार रेखा
नित्य अंकित रहती है।

